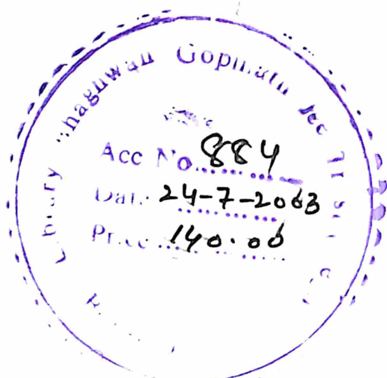
कशमीरी पंडितों के
संस्कार



लेखक

मोहन लाल आश


Gopinath Jee
Acc No. 884
Date 24-7-2063
Price 140.00





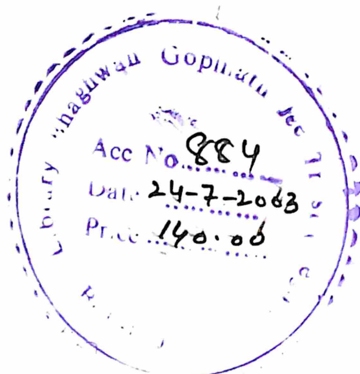

कशमीरी पंड़ितों के सँस्कार

व

परम्परा, उपासना विधि, रीतिरिवाज
त्यौहार और कई महत्वपूर्ण विषय

लेखक : मोहन लाल आश

मूल्य : Rs 140



ॐ नमो भगवते गोपीनाथाय



Jagadguru BHAGAWAAN GOPINATHJI

अज्ञान के अंधकार में प्रकाश सतंभ

भगवान गोपीनाथ



''प्रस्तावना''

हिंदू धर्मशास्त्रों में ब्राह्मण के लिए सोलह संस्कारों का निरूपण किया गया है । उनमें सबसे पहला है 'गर्भाधान' और अन्तिम ,'अन्तिम संस्कार' है । इन संस्कारों को हम भूल चुके हैं । भारत भर में केवल मुण्डन , विवाह और अंतिम संस्कार ही शेष रह गए हैं ।

कलियुग के प्रभाव के चलते भी कश्मीर के पंडितों ने इन सोलह संस्कारों में से कुछ को अभी तक बचाए रखा है ....इस छोटे से समाज में जिन संस्कारों का अनूष्ठान आज भी प्रचलित है वे इस प्रकार हैं ।

नामकरण संस्कार : इसे कश्मीरी में 'काहनेथर ' कहते हैं इसका अनुष्ठान , बच्चे के जन्म से ग्यारहवें दिन किया जाता है । किन्हीं कारणों से 'काहनेथर' समय पर न हो पाए तो उसे 'मुण्डन संस्कार' के साथ किया जाता है या फिर 'मेखला' के साथ

'मेखला' अर्थात यज्ञोपवीत संस्कार को कश्मीरी पंडित समाज में बड़ी धूम धाम से मनाया जाता है ...इसके साथ ही 'गर्भधान संस्कार' से लेकर सभी संस्कारों को पुनः विधिपूर्वक .... देवता पूजन , हवन आदि के द्वारा अवश्य किया जाता है। एक एक संस्कार के निमित्त से अग्निहोत्र किया जाता है । इसे कश्मीरी में 'पाक्षयाग' यानी 'दक्षयाग' कहते हैं । इन 'पक्षयागों ' के कारण मेखला संस्कार काफी लम्बा चौड़ा होता है । इसीलिए 'मेखला संस्कार' में पंद्रह से बीस घंटों का समय लगता है।

मेखला के उपरांत 'समावर्तन' संस्कार किया जाता है । जिसे कश्मीरी में 'योनि बदलाबुन' कहते हैं । इस संस्कार से पहले बालक को छः लड़ियों वाला यज्ञोपवीत पहनाया जाता है जिसमें तीन पिता की ओर से तीन गुरू की तरफ से होती हैं ।'समावर्तन' के समय गुरू की तीन लड़ियों को छोड़ केवल पिता द्वारा पहनाई गई तीन लडियों वाला यज्ञोपवीत पहन कर रखना होता है, जब तक बालक का विवाह नही होता ।

विवाह संस्कार में बालक का श्वसुर उसे एक और तीन लड़ियों वाला यज्ञोपवीत पहनाता है । तदुपरांत सन्यास आश्रम में प्रवेश से पूर्व तक यह छः लडियों वाला यज्ञोपवीत पहनना होता है । एसा भी कहा जाता है कि इन छः लड़ियों में तीन पत्नी के भाग की होती हैं । जिसके कारण पति द्वारा किए सभी पुण्य कर्मों में आधा भाग स्वतः ही पत्नी को प्राप्त होता है । 'सन्यास' के समय यज्ञोपवीत को किसी पवित्र नदी को अर्पण करता हुआ व्यक्ति घर गृहस्थी छोड़ सन्यास धारण कर लेता है ।

यह है संक्षिप्त ब्योरा संस्कारों का । संस्कार सारे के सारे सोलह होते हैं । गर्भधान से लेकर अन्तिम संस्कार तक जिन में से अधिकांश संस्कार लुप्त हो गए हैं। परन्तु कश्मीरी पंडित समाज में अभी तक जातकर्म , नामकरन , मुण्डन , यज्ञोपवीत(मेखला) , विवाह और अन्तिम संस्कार ,इन छः संस्कारों को अभी तक विधिपूर्वक किया जाता है ।

कलियुग के वर्तमान बलशाली दौर में भी इन संस्कारों पर यथा संभव प्रकाश डालने के अभिप्राय से, श्री मोहनलाल जी आश ने , इन संस्कारों के विषय में जानकारी देने के लिए, व कश्मीरी पंडित समाज की परम्परागत संस्कृति को जीवित रखने के लिए ,इस लघु ग्रन्थ का निर्माण करते हुए ; इस पंडित समाज पर बड़ा उपकार किया है। जिसके लिए मैं उनको बधाई दे रहा हूं । साथ ही परमेश्वर से प्रार्थना करता हूं कि श्री आश जी का यह शुभ प्रयत्न भली भान्ति सफल होता रहे और आगामी पीढ़ियों के कश्मीरी पण्डितों को अपनी संस्कृति के विषय में यथाशक्ति ज्ञान मिलता रहे ।

डॉ० बलजीनाथ पण्डित

पुस्तक का नाम : काशमीरी पंड़ितों के संस्कार

लेखक : मोहन लाल आश

पता : जन्म भूमि : विजिश्वर (काशीर)

कमप्यूटर : रमेश तिक्क (R.C.C, Old Janipur, Jammu)

प्रेस : जे-के आफसेट प्रस देहली

मूल्य : Rs.140

टाइटल : प्यारे लाल सुदेशी

पुस्तक मिलने का पता

1. Veer Ji Tikoo: Dev. Officer, Model Town, Chankyapuri, Rohtak, Haryana
2. "Teen Bayee" Book sellers Pacca Danga, Jammu
3. Vijeshwar Karyaly Tallab Tillo Jammu
4. Utpal Publications IInd Floor, Kaneja Complex Shakarpur, Delhi
5. Bhan Opticals, Ban-Tallab, Jammu
6. Nagrad ADBI Sangam Jammu
7. Mohan Lal Tikoo (Aash) Durga Nagar, Sec. 1, Jammu

यह पुस्तक युग के महान सन्त पर्म पूज्य :-

- स्वामी कृष्णा नन्द र्सस्वती महाराज रामनगर
- स्वामी स्वयमानंद जी मुठी
- स्वामी मस्त बब जी सुबाश नगर
- स्वामी मोती लाल जी ब्रह्मचारी
- स्वामी कुमार जी क्राल बब आशरम उधमपुर
- स्वामी पोश बब जी : महाराज को समर्पित है ।।

मोहन लाल आश



आत्मपरिचय

मेरा जन्म एक उत्सवधर्मी कश्मीरी पंड़ित घराने में हुआ जहां प्रतिदिन कोई न कोई व्रत, त्यौहार अथवा पर्व मनाने की परंपरा है। प्रायः मैं सोचा करता कि उन पर्वो, त्यौहारों और पूजाओं को मनाए जाने के पीछे कौन कौन से आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक व एतिहासिक कारण रहे हैं। मैं सोचा करता यदि यह पर्व उत्सव, आज की वैज्ञानिक सोच के साथ अपना ताल मेल न बिठा पाएं, उस युवा मन को अपनी उपयोगिता का विश्वास न दिला पांए जिसने Dimentional theory का अध्ययन किया है, तो कब तक चल पाएंगे यह व्रत, त्यौहार, उत्सव और संस्कार।

मैं स्वीकार करता हूं कि मुझमें अतीत का मोह है। लेकिन क्या अतीत का मोह होना गलत है ? क्या हमारा अतीत ही भविष्य की रूपरेखा निर्धारित नही करता ?

कहते हैं एक समय कश्मीर की धरती पर पंड़ितों के ग्यारह घर ही रह गए थे। तब वह कौन सा तत्व था जिसने उस अंकुर को पुनः ऐसा पुष्पित पल्लवित किया कि आज फिर हमारी संख्या साढ़े सात लाख के आसपास

तो है ही । कितनी आंधीयां, कितने तूफान, कितने पलायन हुए, हम फिर भी जीवित हैं। केवल जीवित ही नही, अपितु हर क्षेत्र में अपना मुकाम बना रहे हैं। वह कौन सा तत्व है? उसी तत्त्व की खोज का प्रयास है यह पुस्तक। आशा है, आप सब भी इस प्रयास में सहभागी बन्ेंगे।

ॐ ॐ ॐ

आभार

मैं अपने विद्या गुरू डा० बलजी नाथ पंडित का अत्यंत आभारी हूँ, जिन्होने मुझे संस्कार दर्शन का पहला पाठ पढ़ाया । बी.एन पारिमू (Producer Radio Station - Jammu) ने संस्कारों में वैज्ञानिक अविष्कारों का ज्ञान कराया । श्री प्यारे लाल जी स्वदेशी ने पुस्तक का सुन्दर टाईटल बनाकर दिया। मेरे बचपन के मित्र श्री मखन लाल गोजा ने पुस्तक की चित्रकारी की । श्री बदरी नाथ अभिलाष ने मुझे सब से पहले संस्कारों पर लिखने के लिए प्रेरित किया । श्री पी.एल राज़दान ने पुस्तक की कापी तैयार की। श्री रतन लाल जौहर और श्री जवाहर लाल सरूर ने कंप्यूटर का प्रबन्ध करने में दौड धूप की। मैं इन सभी मित्रों का आभारी हूँ।

यदि मैं साहित्य आचार्य श्री भूषण लाल ज्योतिषी सपुत्र श्री प्रेमनाथ शास्त्री का उल्लेख न करूँ, जिन्होने विजयेश्वर पुस्तकालय से बहुमूल्य पुस्तकें लाकर मुझे पढ़ने को दीं, तो अकृज्ञता होगी। मैं मन की गहराइयों से इन का आभारी हूँ।

मेरे कुछ मित्र जो किसी कारण से अपने नाम का प्रकाशन नही चाहते और जिन्हों ने मेरा बहुत साथ दिया है। मै उनका धन्यावाद करता हूँ।

मेरे मित्र और साहित्य का गहरा अध्यन रखने वाले निशाकामी साहित्यकार श्री शाम बिहारी सागर यदि मेरा साथ न देते तो यह पुस्तक भी न होती । उन्होने हर कदम पर मेरा साथ दिया। मैं अपने को उनका ऋणी मानता हूँ।

में अपने मामा जी श्री R.C.Raina, Regional Manager Insurance group chandigarh" की श्रदा और भक्ती को नमन करता हूँ । श्री रैना इस जाती के पलायन से अंत्यन्त दुखी हैं वह इस बिखराव में सनातन धर्म की मुयादा को संस्कारों के रूप में जीवित देखना चाहते है।

में अपने पुत्र राज वीर जी तिकू की पित्र भक्ती की प्रशन्सा किये बिना नही रह सकता । जिन्हूँ ने पुस्तक प्रकाशन में अपना बरपूर सहयोग दिया ।

मोहन लाल आश

दुर्गा नगर जम्मू

१५, अक्टूबर २००१ ई०

कश्मीरी पंड़ितों की संस्कृति व संस्कार

संस्कृति समाज का व्यक्तित्व है। यह समाज की अनगिनत धाराओं का गतिशील संगम है। संस्कृति में किसी समाज का रहन–सहन, खानपान, आचार–विचार, व्रत–उपवास, तीज–त्यौहार, धार्मिक विश्वास व दार्शनिक चिंतन की लगभग सभी धाराओं उपधाराओं का समावेश रहता है। लेकिन संस्कृति का मूलाघार संस्कार और परंपराएं हैं जो हमें विरासत में मिलती हैं।

जड़ों से कट कर कोई भी समाज अपनी पहचान खो देता है। समाज की जड़े उसकी संस्कृति में होती हैं। संस्कृति का वाहक तत्व संस्कार हैं। **क्या होते हैं संस्कार** ?

संस्कार का अर्थ है किसी व्यक्ति वस्तु अथवा विचार का परिष्कार करना, उसे मांजना, चमकाना। समाज का प्रवाह, उसकी व्यवस्था निंरतर बनी रहे इसीलिए समाज के प्रत्येक घटक का संस्कारित होना आवश्यक है।

इस संसार में कुछ बर्बर संस्कृतियां भी है। उन्हे बर्बाता के संस्कार मिले होते है। कुछ सभ्य संस्कृतियां हैं जिन्हे सभ्यता के संस्कार मिले होते हैं। कश्मीरी पंड़ितो की संस्कृति सभ्य संस्कृतियों में गिनि जाती है। "जियो और जीने दो" उनका आदर्श है।जब कि बर्बरता का आदर्श होता है, न जिंएगे न जीने देंगे।

काश्मीर की लोक संस्कृति का आधार भी युगों से चले आ रहे संस्कार और परंपराएं हैं। जिनका निर्वाह कश्मीरी समाज आज तक करता आ रहा है। लेकिन निर्वासन की त्रासदी ने संस्कार निर्वाह की परंपरा को आघात पहुंचाया है। जिसके काररा कश्मीरी पंड़ित समाज के सामने अपनी जातीय अस्मिता खो देने का भय उपस्थित हो गया है। इसीलिए अपनी परंपराओ और संस्कारों का पुनःस्मरण करना करवाना आवश्यक हो गया है। वास्तव में कश्मीरी संस्कृति, विराट आर्य संस्कृति का ही उपांग है। लेकिन जहां बृहद् हिन्दू समाज अपनी संस्कृति एवं संस्कारों का विस्मरण कर चुका है वहीं कश्मीरी पंड़ितों के पास यह संस्कार एवं परंम्पराए अपने मूल रूप में जीवित और प्रतिष्ठित हैं।

कश्मीरी संस्कारों की प्रथम पुस्तक लोगाक्षि गृहसूत्र के नाम से विख्यात है। यह पुस्तक लगभग दो हजार वर्ष पूर्व लिखी गई थी। लेकिन आज यह लगभग अप्राप्य है। फिर भी इसके सदंर्भ सूत्र किसी–किसी ग्रन्थ में मिलते हैं।

थोड़ा सचेत होकर यदि हम अपने संस्कारों और परंपराओं का अवलोकन करें तो सहज ही समझ में आएगा कि इन संस्कारों और परंपराओं के पीछे कितना गूढ़ और वैज्ञानिक चिंतन है।

जैसे बहते हुए जल में थूकना पाप है, हरे और फलदार पेड़ पौधों को काटना पाप है। यह निषेध उस युग से चले आ रहे हैं जब पर्यावरण प्रदूषण जैसी कोई समस्या नही थी। लेकिन, आज इन नियमों का क्या महत्त्व है कोई भी पर्यावरण विशेषज्ञ आपको बता सकता है।

इसी प्रकार यज्ञ, हवनादि कार्यो का अपना महत्व है। यज्ञ, हवनादि कार्यक्रम तो ऋग्वैदिक काल से चला आ रहा है। कारण क्या है ?

एक सीधा सा प्रश्न । क्या आपने क़भी कूड़ा

जलाया है, जिसमें प्लास्टिक और अन्य वस्तुएं हों जैसे बाल, चमड़ा इत्यादि ? क्या होता है ? सांस लेना भी दूभर हो जाता है। ऐसे धुएं में लगातार रहने से फेफड़ों और सांस के कई प्रकार के रोग हो जाते हैं । साफ बात है यदि अग्नि को आप विषैले पदार्थ देंगे तो अग्नि उन्हे विषैले धुएं के रूप में आपको लोटा देगा। और यदि आप सात्विक व स्वास्थ्यवर्घक पदार्थ, श्रद्धापूर्वक अग्नि को समर्पित करते हैं, वापसी भी वैसी होगी। आर्य संस्कृति में अग्नि, जल, वायु , सूर्य और पृथ्वी यह पांच तो प्रत्यक्ष देवता माने गए हैं। आर्य संस्कृति कृतध्नों की संस्कृति नही जो भी उन्हे उपकृत करता है, उसकी पूजा सम्मान का विधान उन्होने निश्चित किया है। हमारी संस्कृति जड़वादी नही है। पश्चिम की तरह हम प्रकृति पर विजय की बातें नही करते और न ही प्रकृति के शोषण में विश्वास करते हैं। अपितु प्रकृति की लय–ताल को भंग किए बिना जो विकास हो सकता है हमारें लिए प्राचीन काल सें विकास की सही अवधारणा वही है।

अग्निपूजा, हवनादि कर्मो का महत्व केवल वायु प्रदूषण से मुक्ति हेतू ही नही है। इसके कई सामाजिक, आर्थिक व अध्यात्मिक पहलू भी हैं। कई लोग आर्यों को शीत प्रदेश का निवासी होने के काररा अग्निपूजक मानते है किंतु यह पर्याप्त एतिहासिक कारण नही है।

इसी प्रकार हमारे पूजा, आरती जैसे कार्यो में बहुत ही सुन्दर और उपयोगी कार्य जुड़े हुए है .जैसे घंटा बजाना, शंख बजाना, तुलसी जल का चरणामृत आदि। इन सब क्रियाओं का अपना महत्व है। आजकल कई लोग मूर्तिपूजा को दकियानूसी पुरातनपंथी कह कर उपहास उड़ाते हैं। लेकिन उन्हे शायद पता नही कि इन सभी चीजो का विधायक मनोवैज्ञानिक प्रभाव क्या है ? आज हम जो जीवन जी रहे है क्या इसे सचमुच जीवन कहा जा सकता हैं ? एक अंधी दौड़, हर पल तनाव से भरा हुआ, हर व्यक्ति चिंताग्रस्त, अनिद्रा का शिकार , कही कोई उद्देश्य नही, कहीं कोई लक्ष्य नही, कहीं कोई संतुलन नहीं। ऐसा नही कि पुराने समयों में जीवन कोई बेहतर था। तब भी यही हाल थे । डिग्री का अतंर हो सकता है। आदमी तब भी चिंताग्रस्त था।

गरीबी, युद्ध से जूझता था। लेकिन उसकी दिनचर्या में कुछ पल आश्वासन के भी थे। जिनमें वह कुछ समय के लिए अपने सारे भय सारे भार परमात्मा को सौंप देता था। कुछ देर के लिए भारमुक्त हो जाता था । यही कारण है तब इतने पागलखाने नही थे।

यह शंखनाद, यह घंटानाद व्यक्ति या व्यक्ति समूह को तनाव मुक्त करने के बेहतरीन साधन हैं। प्रतिदिन शंख बजाने वाले के पास हृदय व फेफड़ों के रोग फटक भी नही पाते ।

घंटा नाद

यदि आप विचार, शब्द और ध्वनी से मुक्त होकर बैठ सकते हों तो यह गटा शब्द, आपके हर प्रकार के रोगों का निवारण करने की क्षमता रखता है। यह सभी चीजे धर्म में कयों जोड गई? यह इसलिए कि उनकी पवित्रता, उनका अनुशासन बना रहे। तभी तो यह साधन ठीक प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं।

हिन्दुओं में बलि विश्वदेव का नित्यकर्म अनिवार्य था। आज इसका लोप हो गया है। क्या था यह कर्म? प्रत्येक हिंदू रसोई में भोजन की पहली आहूति अग्नि

को देने का विधान है। इसके बाद अतिथि अभ्यागत के लिए भोजन बचा कर रखने का विधान है। भोजन आरंभ करने से पूर्व गोग्रास और भोजनोपरांत कुछ भोजन पक्षियों और कुत्तों के लिए निकालने का विधान है। क्या है इस सबका अर्थ ? क्या दर्शाती हैं यह व्यवस्थाएं ? यह तब की व्यवस्थाएं हैं जब अन्न का उत्पादन इतनी विपुल मात्रा में नही होता था...... आज हम पश्चिम के आचार विचार, संस्कृति को अपना आदर्श समझने लगें हैं। हमें देखना चाहिए कि हमारे पास सहअस्तित्व का कैसा सुंदर विचार, भावना और कर्तव्य है जिसे हम बिना किसी खोजबीन के भुलाए जा रहे हैं। हैपी बर्थ डे और प्रकाश को फूंक मार कर बुझाने जैसे कर्म कर रहे हैं।

हमारी विरासत, हमारी संस्कृति में इतना कुछ है कि एक एक बात को खोलने के लिए एक–एक पुस्तक चाहिए । लेकिन, कुछ स्वार्थी लोग, कुछ छोटी–छोटी चीजों को लेकर, सारी की सारी संस्कृति को कंलकित करनेपर तुले हुए है। ऐसा नही कि सभी कुछ अच्छा ही अच्छा था। कुछ बुराईयां भी थीं जो कालान्तर में समाज

में दरारें पैदा कर गई। लेकिन हमें नही भूलना चाहिए कि हमारा समाज जीवन संबंघों के क्षेत्र में एक विलक्षण प्रयोगधर्मी समाज रहा है। कुछ प्रयोग असफल भी हुए । यघपि उनके पीछे भी गहरा और आध्यात्मिक चितंन रहा। यदि वे सफल रह पाते तो शायद हमारा इतिहास दासता का इतिहास न होता । आज आवश्यकता है उन दरारों को पाटने की न कि और चौड़ा करने की । जैसा कि कुछ राजनैतिक दल और संस्थाएं कर रही हैं।

उपरोक्त बातें बृहतर आर्य संस्कृति , कालांतर में जिसे हम हिंदू संस्कृति के रूप में जानते हैं, के संदर्भ में सरसरी तौर पर कही गई हैं। जबकि इस पुस्तक का उद्देश्य कश्मीरी पंड़ितों की संस्कृति के संदर्भ में चर्चा करना है। तो आइए देखते हैं कि क्या हैं हमारे पर्व, उत्सव, व्रत, त्यौहार, परंपराएं , संस्कार , आचार–विचार, नीति, धर्म, दर्शन, और आध्यात्म।

कश्मीरी पंड़ित सारस्वत ब्राहम्ण क्यों और कैसे ?

यह तो सभी जानते हैं कि कश्मीरी पंड़ितों की सभ्यता और संस्कृति के सूत्र नागवंश से जुड़े हैं। कश्मीर के प्रथम नरेश नील नाग थे। जिन्हें महर्षि

कश्यप ने कश्मीर में लाकर बसाया था। लेकिन महर्षि कश्यप का नागों से क्या सबंघ था ? कश्मीर में बसने से पूर्व नाग कहां रहते थे ? उन्हे कश्मीर में आकर ही क्यों बसना पड़ा? आर्यो के साथ इनके क्या संबध थे? शिव ही इनके परम आराध्य देव क्यों हैं ? कश्मीरी पंड़ित अपने को सारस्वत ब्राहम्ण क्यों कहते हैं ? क्या सरस्वती नदी के तटवर्ती क्षेत्र के निवासी होने के कारण ये स्वंय को सारस्वत कहते हैं ? यदि यह सत्य है तो सरस्वती के उद्‌गम और प्रवाह की भौगौलिक स्थिति क्या है ?

यह धारणा कि आर्य मध्य एशिया से चलकर भारत में आ बसे थे, आज लगभग खंडित हो चुकी हैं। बहुत से ऐसे प्रमाण मिल रहे हैं जो सिद्ध करते हैं कि आर्य मूलतः मध्य हिमालय के निवासी थे....... वह प्रदेश जो अभी हाल ही में 'उत्तराचंल' के नाम से उत्तर प्रदेश से अलग हुआ है। कहते हैं महर्षि कश्यप की तेरह पत्नियां थी । जिनमें मुख्य थीं अदिति , दिति, दनु , सुरभि, कद्रू, वनिता इत्यादि । उन दिनो बच्चों की पहचान मां के नाम से जुड़ी होती थी। इसी कारण अदिति के पुत्र

आदित्य कहलाए, दिति के पुत्र दैत्य कहे गए, दनु के पुत्रों को दानव नाम मिला । लगता है कश्यप की यह तीन पटरानियां थीं। क्योंकि अन्य पत्नियों के नाम से उनके बच्चों के नाम मेल नही खाते । जैसे सुरभि के पुत्र रूद्र कहलाए, कद्रू के पुत्र नाग कहे गए। जो भी हो एक बात तो तय है कि दैत्य, आदित्य, दानव रूद्र एवं नाग सभी आर्य थे। कालांतर में सौतिया डाह के चलते या वर्चस्व (सनट) के संघर्ष के चलते इनमें युद्ध होते रहे । जिसके कारण पलायन, विस्थापन, नई भूमि की तलाश ..... नई नई सभ्यताओं की नीवं पड़ती गई। इसी क्रम में नाग, रूद्र और दानव पश्चिमोत्तर प्रदेशों में फैले और नागों ने कश्मीर में अपने राज्य की स्थापना की जिसके प्रथम नरेश राजा नील थे।

ऋग्वैदिक आर्यो की प्रमुख नदी सरस्वती थी । इसी के तटवर्ती क्षेत्रों में आर्य सभ्यता पुष्पित पल्लवित हुई। ऋग्वेद में नदियों के सदंर्भ में जितना अधिक उल्लेख सरस्वती का हुआ है उतना और किसी नदी का नहीं है। चूंकी आर्य हिमालय की घाटियों में निवास करते थे इसलिए सरस्वती का उद्गम और प्रवाह हिमालय में हीं

है, जिसे हम आज गंगा नदी के नाम से जानते। मूलः सरस्वती यही है। गंगा उस नदी में संगम करने वाली अनेक धाराओं का नाम है जैसे अलकंनदा, जाहन्वी, मन्दाकिनी यह सभी नदिया गंगा के नाम से जानी जाती है।

आर्यो का आदि निवासः मध्य हिमालय में विद्वान लेखक "भजन सिंह" ने इस तथ्य की विवेचना की है। उनके अनुसार 'सरस्वती' का उद्‌गम 'मानाधार' १८६५०' की उचांई से है। केशव प्रयाग में 'अलकनंदा' नदी उसमें प्रवेश करती हैं, विष्णुप्रयाग में 'रसा' और कर्णप्रयत्ग में 'पिंडर' सरस्वती में जा मिलती है। यह देव प्रयाग है जहां' जाहूनवी' जो कि मूलरूप से 'गंगा' नदी है ' सरस्वती' में प्रवेश करती है। औरइससे आगे हम इस नदी को 'गंगा' के रूप में जानते हैं। चूंकी नाग भी अन्य आर्यजातियों की तरह सरस्वती के तटवर्त्ती क्षेत्रों के निवासी थे, इसलिए कश्मीरी पंड़ितों का स्वयं को सारस्वत ब्राहम्ण घोषित करना युक्तियुक्त है।

वैसे भी कश्मीरी पंड़ितों की सभ्यता, संस्कृति और संस्कार अन्य आर्य दिूजों से भिन्न नहीं हैं। देश काल के अनुसार कुछ बदलाव अवश्य है। लेकीन परम्परा का मुलाधार वही है। उदाहरण के लिए जैसे गौरीतृतीया शेष भारत में जो महत्व गुरू पूर्णिमा का है वही महत्व कश्मीर में गौरी तृतीया का है। कश्मीरी में इसे 'गौरीत्रॅय' कहते हैं।

गोरॅ त्रय

'गौरीत्रॅय'

माघ शुक्ल पक्ष तृतीया को मनाया जाने वाला यह पर्व पंड़ित समाज के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। बेशक, आज यह एक औपचारिकता बन कर रह गया है। कम लोग ही इसे मनाते हैं। वह भी प्रतीकात्मक रूप से । लेकिन कभी इस पर्व की बड़ी प्रतिष्ठा थी।

दरअसल, गुरू शिष्य की परंपरा , बच्चों के अक्षर ज्ञान का श्री गणेश और विद्या की देवी भगवती सरस्वती की आराधना के रूप में यह दिन मनाया जाता है।

ऐसा माना जाता है कि यह दिन आध्यात्मिक कार्यों में सिद्धि प्रदान करने वाला है। इस दिन हर घर में माता सरस्वती की पूजा का विधान है। कश्मीरी पंड़ित माता सरस्वती से धन दौलत नही अपितु विद्!ा का वरदान मांगता है।

"सरस्वति महाभागे विद्या कमल लोचने विश्वरूपे विशालाक्षि, विद्याम् देहि सरस्वति। यदि कश्मीरी पंड़ित अपने पैरों पर फिर से खड़े है तो इसका श्रेय विद्या का संस्कार देने वाले इस महापर्व को ही जाता है । कश्मीरी

पंड़ित समाज में किसी का धनहीन होना इतना बुरा नही समझा जाता जितना कि किसी का निरक्षर व विधाहीन होना बुरा समझाा जाता है। यहां तक कहा गया है

दयाहीनं धर्म त्यजेत्, विद्याहीनं शिशु त्यजेत्

त्यजेत्क्रोधमुखीं भार्या निस्नेहान् बांधवान् त्यजेत्

अर्थात जिस धर्म में दया नही उस धर्म का त्याग कर देना चाहिए । जिस बालक के पास विद्या नही, वह त्यागने योग्य है जो पत्नी क्रोध करने वाली है, उस पत्नी को त्याग देना चाहिए । जिन रिश्तेदारों में स्नेह न हो उन्हे त्याग देना चाहिए।

कहा जाता है कि इसी पर्व पर कश्मीर के महान तपस्वी व सिद्धात्मा ऋृषि पीर को अपने गुरू स्वामी कृष्णकार से गुरूदीक्षा मिली थी। यह माना जाता है कि इस दिन जगत् अम्बा अपने तीनों रूपों उमा , लक्ष्मी व सरस्वती के रूप में उस घर में वास करती है ज़िस घर में इस दिन गुरू पूजा के साथ विधारम्भ किया जाता है।

आज आवश्यकता है कि इस महान पर्व को मात्र औपचारिकता से निकाल कर इसकी महानता के अनुरूप इसे स्थान दिया जाए । और यह कार्य कश्मीरी समाज

की मातृ शक्ति ही कर सकती है। किसी मित्र ने कहा था कि कश्मीरी पंड़ितो की माताएं अपने आप में एक एक विश्व–विद्यालय हैं। नई पीढ़ी को अपने बुर्जुगो से वह सब अवश्य सीखना चाहिए जिसने इस समाज के गौरव को आज तक बचाए और बनाए रखा।

यद्यपि "गोरॅ त्रय" स्वयं में विद्यारंभ संस्कार का एक अंग है लेकिन यही सभी संस्कारों का मूल है।



गोरॅ त्रय का प्राचीन आकार

कश्मीरी पंड़ितों का आध्यात्मिक चिन्ह तिलक:

माथे पर तिलक लगाने की परंपरा वैदिक काल से सारे हिन्दू समाज की परंपरा है। आज इसका लोप हो रहा है। यह इसलिए क्योंकि इस प्रतीक चिन्ह के महत्व को हम भूल चुके है।





इस देश में गुरूजनों का सम्मान करने की विधि उनके चरण छूकर उनकी चरणरज माथे पर लगा कर करने की रही है। परमात्मा की चरणरज माथे पर धारण की जाती है, तिलक के रूप में । परमात्मा अथवा अपने इष्ट अथवा अपनी गुरू पंरपरा को सम्मान देने के प्रतीक के रूप में माथे पर तिलक धारण किया जाता है। यह माना जाता है कि इसमें परमात्मा अथवा इष्ट अथवा गुरूजनों या फिर तीनों का आर्शीवाद व्यक्ति को प्राप्त

होता है।

तिलक मस्तक पर धारण करने का अर्थ विनयी होना है। द्विज के लिए तिलक धारण करना इसलिए अनिवार्य है क्योंकि यह विद्या के अहंकार से मुक्त करता है। जौसे वह समाज का पथ प्रदर्शक बने ।

एक प्रश्न है कि दो भौहों के बीच ही तिलक क्यों लगाया जाए ? ऐसा माना जाता है कि यही वह स्थान है जहां ज्ञाननेत्र खुलता है। शिव का तीसरा नेत्र यहीं स्थित है।

मान लो कोई मनुष्य गहरी सोच में हो या क्रोध में हो या किसी कारण से आश्चर्य चकित हो रहा हो तो माथे पर सिलवटें पड़ती हैं। यह कैसे होता है ? दरअसल यह इसी ज्ञाननेत्र के सतर्क होने का संकेत है। इसलिए इस स्थान को ठंडा रखने के उद्‌देश्य से चंदन और गर्म रखने के उद्धेश्य से केसर का तिलक लगाया जाता है।

तिलक धारण करने का एक सामाजिक उद्धेश्य भी है। उसे धारण करने से एक पहचान बनती है। यह व्यक्ति किस सम्प्रदाय में दीक्षित है या किस गुरू का शिष्य है उसके तिलक को देखकर अनुमान लगाया जा

सकता है।

तिलक धारण करने का एक और भी उद्धेश्य है वह यह कि मनुष्य बहुत से असामाजिक और दोषयुक्त कार्यों को करने से बच जाता है। उसे तिलक की मर्यादा का ध्यान रखना पड़ता है। आम तौर पर सार्थक जीवन मूल्यों में उसकी आस्था, उसका विश्वास डगमगाता नही। इस कारण उसके चरित्र का विकास दिशाहीन नही हो पाता ।

सबसे बड़ी बात यह है कि तिलक शून्य मस्तक भाग्यहीनता को दर्शाता है। यह नियति को न मानने वाले लोगों के लिए हो सकता है, ठीक हो । लेकिन जो लोग भाग्य को मानते है, परमात्मा की इच्छा को सर्वोपरी मानते हैं, उनके लिए तिलक धारण करना परमात्मा की शरण में होने का चिन्ह है। यह सौभाग्यशाली होने का चिन्ह है।

संक्षेप में तिलक मन को शांत रखता है । परमात्मा में दृढ़ आस्था उत्पन्न करता हैं और सौभाग्य के द्वार खोलता है । बशर्ते कि हम उस के महत्व को गहरायी से समझें।

तिलक का अध्यात्मिक महत्व

योगी और साधक तिलक की महिमा का गान करते हैं। क्योंकि साधना के समय और, प्राणायाम् अभ्यास के कारण माथे पर गर्मी और जलन उत्पन्न होती है। इस लिये हमारे ऋषियों ने सिद्ध किया है, कि माथे पर कोई ठंड़ा लेप प्रयोग करना चाहिये, साधनारत उन साधकों और योग अभ्यास करने वाले ऋृषियों ने माथे पर चन्दन लगाने पर बल दिया है। क्योंकि चन्दन शीतल स्वभाव की वस्तु है। चन्दन का टीका लगाने से मस्तिष्क ठंडा रहता है। गर्मी और जलन कम होती है। साधारण मनुष्य के लिये पूजा करते समय त्यौहार मनाने पर, श्राद क्रिया के समय, यात्रा पर जाने , और यंज्ञोपवीत धारण करते समय टीका अवश्य लगाना चाहिये ।

यज्ञ करते समय भस्म का काला टीका लगाया जाता है । कई सँत सिन्दूर का टीका लगाते हैं। सिन्दूर का स्वभाव गर्म है। साधारणतया मनुष्य को प्रतिदिन सिन्दूर का टीका नही लगाना चाहिये। इस का टीका महा गणेश, वटक नाथ उस के भैरवों देवी ज्वाला

भगवती देवी काली माता, देवी जया भगवती और दूसरे देवताओं को लगाना उत्तम माना जाता है। काश्मीर चूँकि शीत प्रदेश है इस लिये यहाँ लोग जैफरान (केसर) का टीका प्रयोग में लाते हैं। क्योंकि केसर गर्म असर रखता है।आत्म ज्ञानी संतो का कथन है कि यदि माथे पर गोर्लाद टीका लगाया जाये और गुरू महाराज की बताई हुई विधि के अनुसार ४० दिन तक इस गोलार्द पर ध्यान केन्द्रीत करे तो मनुष्य आर्श्चयजनक अनुभूतियों से आनंदित होता है तथा साधक ध्यान, रहता है और शान्ति प्राप्त करता है।



शिखा धारण का महत्व (चोटी)

शिखाधारण की परंपरा मात्र भारत में ही प्रचलित नही थी। अपितु दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में प्राचीन काल से चली आ रही है।



अध्यात्म की दृष्टि से साधना पूर्व की जो तैयारी है उसमें शिखा का महत्वपूर्ण योगदान है। साधना से पूर्व करन्यास व अगं न्यास किया जाता है। जिसका अर्थ है समूची देह को तनाव से मुक्त करना, स्नायु तन्त्र को शिथिल करना । प्रायः स्नायु तन्त्र को तनाव मुक्त करने की प्रक्रिया में निचले अंगो से आरंभ करके उपर की और चलते हुए सारे तनाव को शिखा तक लाकर उसका विसर्जन कर दिया जाता हैं। यह प्रक्रिया तन्त्र साधना में पहले पहल अपनायी जाती थी। कालान्तर में अन्य धार्मिक कार्यो में भी इसका प्रयोग होने लगा।

आज के संदर्भ में शिखा धारण करने का तभी महत्व है यदि आप साधना में उत्सुक हैं। अन्यथा इसका कोई उपयोग नही।

ऐसा माना जाता है कि शिखा स्थान देह में व्याप्त समूचे तन्त्र का संचालन केन्द्र है। हो सकता है इस केन्द्र को बाहरी आघात से बचाए रखने के लिए शिखा धारण करने की परंपरा रही हो। जो भी हो शिखा धारण करने और देहके स्नायु तन्त्र में कोई सबंध हैं।

नॉरिवन् अर्थात मौलि

जैफरानी (केसरी) व सफेद रंग में रंगा कच्चे सूत का धागा जिसे कलाई पर बांधा जाता है नॉरिवन् कहलाता है। हिंदी प्रदेशों में इसे मौली कहा जाता है, जो प्रायः लाल रंग में रंगा होता है। वास्तव में यह रक्षासूत्र है, जिसे अभिमंत्रित करके कलाई पर बांधा जाता है। कहा जाता है कि यह रक्षासूत्र शक्ति और तेज प्रदान करने वाला होता है और कई प्रकार के अनिष्टों और कष्टों से व्यक्ति की रक्षा करता है।

रक्षा सूत्र का धार्मिक महत्व इतना अधिक है कि हर प्रकार के धर्म कार्यों में इसका बांधा जाना अनिवार्य है। इसके बिना कोई भी धर्म कार्य चाहे वह साधारण पूजा हो या तन्त्रानुष्ठान, सम्पन्न हुआ नही माना जाता।

इस रक्षा सूत्र का एक वैज्ञानिक पक्ष भी है। आजकल रक्तचाप नियंत्रक यंत्र (Blood pressure wrist) का उपयोग रक्तचाप को नियंत्रण में रखने के लिए किया जाता है। आदि काल से यह कार्य रक्षासूत्र करता आ रहा है। देखने में आया है कि लगातार पांच वर्षो तक इस रक्षासूत्र के प्रयोग से दिल के रोगों में कमी हो जाती

है। दिमाग की सूजन और उच्च रक्तचाप से भी मुक्ति मिलती हुई देखी गई है।

नॉरिवन् का प्रयोग नामकरण संस्कार से प्रारंभ होता है। यह साल भर कलाई पर बंधा रहता है। केवल जन्मदिन के अवसर पर इसे बदला जाता है। जन्म दिन के अवसर पर गुरू जी को आसन पर बिठा कर यजमान उनके सामने एक थाली में एक गिलास या खोसू (एक प्रकार का कश्मीरी बर्तन जो अधिकतर चाय या कहवा पीने के काम आता है।) उल्टा कर रखता है। फिर नॉरिवन् को अभिमन्त्रित करके इसकी प्राण प्रतिष्ठा की जाती है।



उसके उपरांत दूध, चीनी, फल–फूल , अर्ध्य द्वारा उसकी पूजा की जाती है। यह पूजा पंचोपचार से लेकर षोड्शोपचार तक की हो सकती है। उसके बाद उस रक्षासूत्र में सात चिंरजीवी ऋृषियों के नाम से सांत गांठे लगाई जाती हैं। ईश्वर से प्रार्थना की जाती है जिस प्रकार उन सात ऋृषियों को चिर जीवन का वरदान मिला है उसी प्रकार यजमान भी आयुष्मान हो। ऋृषियों के नाम से लगाई जाने वाली यह गांठे ब्रह्मग्रन्थियां कहलाती हैं। चिरंजीवियो के मंत्र इस प्रकार है (अश्वत्थामा महाभाग सप्तकल्पांत जीवन आयु आरोग्य सिद्धयर्थ् प्रसीद भगवन् मुने 'इत्यादि)?

सात ब्रह्मग्रन्थियों वाले इस नारीवन् को यजमान की कलाई पर बांधा जाता है। एक बालिका थाली में चावल दक्षिणा आदि रखकर आरती उतारती है।कहा जाता है कि रक्षासूत्र एक जन्म दिन से दूसरे जन्मदिन तक बंधा रहना चाहिए। इन सप्त चिंरजीवी ऋषियों के नाम इस प्रकार हैं

अश्वत्थामा, बलि, व्यास

हनुमान, कृपाचार्य, मार्कंडेय और परशुराम तदुपराप्त भगवान विष्णु की पूजा की जाती है व नैवेद्य बांटा जाता है।

सन्निवारीयां

गृह प्रवेश के समय सन्निवारियों की स्थापना और प्राणप्रतिष्ठा कश्मीरी पंडितों की परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग है। कश्मीरी में 'सोनॅ' शब्द का प्रयोग गहरायी के अर्थ में होता है। और 'वारी' शब्द घड़े के अर्थ में प्रयुक्त होता है। सन्निवारी का अर्थ 'गहरा घड़ा' है। हांलाकि सन्निवारीया छोटी २ गड़विया होती हैं जो अब प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित की जाती है। गृह प्रवेश के समय सर्वप्रथम रसोई मे सन्निवारीयों की स्थापना की जाती है। इनकी प्राण– प्रतिष्ठा की जाती है। विघ्नहर्त्ता गणपति और कुमार सकन्द का आवाहन किया जाता है। तदुपरान्त अष्ट सिद्धियों की पूजा की जाती है।

माना जाता है कि सन्निवारीयों की प्रतिष्ठाा से तीन कार्यो की सिद्धी होती है।

प्रथम :– गृहस्थ पर देवताओं का अनुग्रह बना रहता है

द्धितीय :– यह गृहस्थ की रक्षा करती हैं (भूत प्रेत इत्यादि से)

तृतीय :– यह गृहस्थ को पितृदोष से बचाती हैं।

यह भी माना जाता है कि इन दो पात्रों में से एक

स्थानीय क्षेत्राधिपति देवता का प्रतीक है और दूसरा राष्ट्रधिपति भैरव का प्रतीक है।

सन्निवारीयों के विषय में कुछ दंत कथाएं भी प्रचलित हैं। कहा जाता है कि सन्निवारीयां बटुक नाथ के साथ आए दो भैरव हैं जिन्हे बटुकनाथ का यह आदेश है कि जिस घर मे शिवरात्रि के अवसर पर वटुक पूजा होती है, उस घर की त्रितापों से रक्षा होनी चाहिए। यह त्रिताप हैं दैहिक, देविक और भौतिक। लेकिन मुख्य विश्वास देवयज्ञ और पितृयज्ञ के संदर्भ में है। दायें वाली सन्निवारी देवताओं की प्रतीक है और बांए वाली पितरों की प्रतीक है। इन गड़वियों में प्रतिदिन स्वच्छ जल भर कर व रसोई में जो भोजन तैयार हो उसका भोग देवताओं और पितरों को लगाना चाहिए । इससे देवता एवं पितर् तृप्त एवं प्रसन्न होकर गृहस्थ का मगंल करते हैं। शायद इसीलिए इन सन्निवारीयों को 'तृप्ति' भी कहा जाता है। यह कार्य चूंकी रसोई बनाने वाली गृहलक्ष्मी द्वारा सम्पन्न होता है इसलिए उसे यज्ञकर्म व श्राद्ध कर्म का फल प्राप्त होता है । इस फल के स्वरूप उसका परिवार फलता फूलता है।

हार मंण्डुल

कश्मीरी पंडित मूल रूप से शिव और शक्ति के उपासक हैं। शक्ति की उपासना वे उसके विभिन्न नाम रूपों की सगुणोपासना के माध्यम से करते हैं। माता के विभिन्न रूपों के जन्मोत्सव, विजयोत्सव वर्ष भर चलते रहते हैं। जैसे माता क्षीर भवानी का जन्मोत्सव ज्येष्ठ की अष्टमी को मनाया जाता है। भगवती गौरी का दिन माघ शुक्ल तृतीया को मनाया जाता है, शिवा का वैशाख तृतीया, जया और विजया का दिन वैशाख शुक्ल नवमी को मनाया जाता है इसी प्रकार भगवती त्रिपुर सुंदरी का दिन माघ शुक्ल चतुर्थी है और भगवती शारिका का जन्मोत्सव आषाढ़ की नवमी को मनाया जाता है। आषाढ़ की नवमी को मनाए जाने वाले शारिका के जन्मोत्सव पर हार मण्डुल डाला जाता है। इस दिन कश्मीरी पंडित अपने आगंनो में कई रंगो का उपयोग करते हुए वृताकार आकृति का निमार्ण करते हैं।

इस आकृति को सजाने में सात रंगो का प्रयोग किया जाता है। यह रंग अपने आसपास मिलने वाले पदार्थो से प्राप्त किए जाते हैं। जैसे शहतूत के पत्तों से

हरा रंग, चूने से सफेद रंग, इंटो के चूरे से लाल रंग, पीले सूखे फूलों से पीला रंग तैयार किया जाता हैं।



हार मण्डुल सूर्योदय से पूर्व घर के आंगन में सजाया जाता है। यह हार मण्डुल एक ओर माता शारिका के श्री चक्र का प्रतीक है तो दूसरी और भगवान सूर्य का आभार प्रकट करने का प्रतीक भी है।

कहते हैं जब कश्यप ऋषि ने जलोद्भव राक्षस को मारने के लिए जगत जननी माता से प्रार्थना की तो माता ने प्रसन्न होकर शारिका का रूप धारण किया और जलोद्भव का संहार किया । सभी देवता और ऋषि माता का जय जय कार करने लगे तभी माता ने ऋषियों को आर्शीवाद देते हुए कहा कि हे ! तपस्वी ऋषिगण , मैं आपकी तपस्या से प्रसन्न हूं ! अब आप लोग निश्चिंत

होकर इस सुंदर और भाग्यशाली देश में बिना किसी भय और दुःख के रहो और अपनी तपस्या पूर्ण करो। मैं आपको सिद्धिदायक यंत्र श्री चक्र प्रदान करती हूं । जो इस श्री चक्र की पूजा अर्चना करेगा उसकी मंत्र सिद्धि हो जाएगी। उसको मेरा दर्शन प्राप्त होगा। और जो व्यक्ति अपने घर में इस सिद्ध यंत्र को स्थापित करेगा उसका घर सारे क्लेशों से मुक्त रहेगा। तब से आज तक माता शारिका का यह "श्री चक्र" कश्मीरी पंडितों की संस्कृति का अभिन्न अंग है। इस श्री चक्र को कश्मीरी पंडित आषाढ़ नवमी को अपने आंगन में सजाते है व इस की पूजा करते है।

हार मण्डुल के संदर्भ में एक मान्यता यह भी है कि इस दिन यानी आषाढ़ की नवमी को भगवान् सूर्य अपनी गति बदलते हैं अर्थात उत्तरायण से दक्षिणयण की ओर चलने लगते हैं। सूर्य के उत्तरायण के समय पृथ्वी रसयुक्त होती है। पेड़ पौधों वनस्पतियों के अंकुरित और फलने फूलने का समय होता है। पेड़ पौधों पृथ्वी से रस ग्रहण करके फसल देने की प्रक्रिया में होते हैं अर्थात सूर्य देव का उत्तरायण में होना जीवन दायी समय है। अब चूंकी इनकी दूसरी गति प्रारंभ होती है इसलिए उनका आभार प्रकट करने के लिएं व नमन करने के लिए पृथ्वी पर उनका आकार बनाया जाता है व उसकी पूजा की जाती है।

संस्कार

संस्कार मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व को उजागर करने का नाम है। यह कार्यरत जीवन व्यतीत करने का सूचिपत्र है। जो शिशु गर्भावस्था में ही प्रारम्भ होकर जीवन के अन्त तक जारी रहता है।

संस्कार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मिलते है। इस में माता, पिता, बहन, भाइयों और आसपास के वातावरण का प्रभाव भी सम्मिलित होता है। घर के सदस्य संस्कारों पर चलने वाले और सदाचारी हों, धर्म में आस्था रखने वाले हों तो बच्चों पर भी उन का प्रभाव पड़ता है।

अपनी अपनी समाजिक व्यवस्था के अनुसार संसार के सभी देशों और जातियों में संस्कार होते हैं। मगर भारतीय संस्कारों की बात ही निराली है। ऐसे संस्कारों का रूप हमें संसार की किसी जाति में नही मिलता ।

संस्कार देश की संस्कृति में रचे बसे होते है। जितनी प्रगतिशील संस्कृति हो उतने ही अच्छे संस्कार आने वाली पौध को मिलते हैं। संस्कारों की पृष्ठभूमि महर्षी लोगाक्ष ने तैयार की थी । उन की विश्व विख्यात पुस्तक 'लोगाक्ष गृहय् सूत्र' नाम से प्रचलित है। मगर दुर्भाग्य वश यह आम जनता तक नही पहुँच सकी ।

जीवन का हर एक कार्य संस्कार श्रृंखला में आता है।

जैसे सत्य बोलना, चारों वर्णों के हित में सोचना, ज्ञान प्राप्ति, आत्म प्रकाश की ओर जीवन व्यतीत करना, गुरू सेवा, 'मातृदेवोभवः' माता को ईश्वर का स्वरूप जानना, 'पितृदेवोभवः' पिता को ईश्वर का स्वरूप जानकर उन की सेवा करना, धर्म की पालना, अतिथि सत्कार, रीतिरिवाज़ गृहस्थधर्म की पालना, समाधिलीन होना, गुरूकृपा प्राप्त करना । यह सारे कार्य संस्कार श्रृंखला में आते हैं। अगर हम गहराई से संस्कारों का चिन्तन करेंगे तो इन की संख्या सैंकड़ों में आती है, अब गृह शास्त्र के प्रकाण्ड पंडितों और शैव शास्त्र के आर्चायों ने संस्कारों की २४ वर्गों में बांट दिया है। मगर इन में से १६ संस्कारों को पूर्ण करना अतिआवश्यक है। इन संस्कारों की विस्तृत जानकारी इस प्रकार है।

गर्भाधान संस्कार

पुंनसवन संस्कार (बालक के पैदा होने का संस्कार)

सीमन्तोन्नयन संस्कार

जात कर्म संस्कार (पैदा होने के समय संस्कार)

नाम करण संस्कार (काह नेथर)

निन्क्रमण संस्कार (बच्चे और उसकी माँ का मकान से बाहिर निकलने या सैर करने का संस्कार)

कुछ संस्कारों की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है।

१. गर्भाधान संस्कार

यह बात मनो विशेषज्ञों, psychologists, बुद्धिजीवयों और धर्म शास्त्र के प्रकाणढ पंडितों ने स्वीकारी है कि एक शिशु की मानसिक उन्नति माँ की कोख से ही आरम्भ होती है।

माँ के गर्भवति होने के तीसरे मास से एक शिशु की मानसिक ट्रेनिंग आरम्भ होती है। जैसे माता के विचार हों ऐसी ही शिशु की मानसिक दशा बनती है। शिशु माता के Impulses को ग्रहण करना आरम्भ करता है। और यहीं से संस्कारों का भी चक्र आरम्भ होता है। अगर माता की मानसिक अवस्था सदाचार की ओर प्रेरित हो तो शिशु भी ऐसा ही बनता चला जायेगा । इसलिये गर्भवति के लिए विद्वानों और शास्त्रों ने आदेश दिया है कि उसे वीरों की आत्म कथाएँ, भद्र पुरुषों, सन्तों और उँची पदवी के मुनियों और ऋषियों की जीवनी पढ़नी चाहिए । गर्भाधान का संस्कार और पूजा तीसरे मास के मध्य में संपन्न होने चाहिए । इस संस्कार में, आने वाले शिशु की मंगल कामना की जाती है।

मनोविशेषज्ञों का मानना है कि माता एक संपूर्ण विश्व–विद्यालय है जो अपने धार्मिक, मानसिक और व्यवहारिक संस्कारों को सीधे शिशु के मस्तिष्क में डालती रहती है। कहा गया है कि गर्भ अवस्था के ६

मास एक माता के लिये कड़ी परिक्षा का समय होता है।

सीमन्तोन्नयन

गर्भ अवस्था के चौथे मास में नया संस्कार 'समन्तु' मनाया जाता है। चौथे मास में माता और शिशु के बीच सीधा सम्पर्क या श्ज्वजंस ज्तंदेउपेपवदश आरम्भ होता है। गर्भवति के घर का वातावरण, जैसे शयन कक्ष की सफाई, उस का पहनावा, बनावसिंगार, खानपान और स्वाध्याय का प्रभाव सीधा शिशु की मानसिक अवस्था पर पड़ता है। इसलिए गर्भवति को निरतंर सत्संग करना चाहिए व क्रोध, परेशानी और मानसिक तनाव से बचे रहना चाहिए । क्योंकि इन सब बातों का शिशु के मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है।

अब समय के उलट फ़ेर और अज्ञान के कारण यह संस्कार यज्ञोपवीत के दिन किया जाता है। जबकि घर क़ी स्त्रियां साफ सुथरे कपड़े पहनती हैं। तिलक और सुर्मा लगाकर बाल संवारती और फूलों के हार पहनती हैं और उन के पतिदेव अपनी स्त्रियों की तरंग में, तूत की छोटी टहनी से नारीवन डालते है।

इस के उपरान्त माताएं टॅकि पूच धारण करती हैं। मगर इस क्रिया का यज्ञोपवीत से कोई संबंध नहीं है।

पुंसवन संस्कार

यह संस्कार महिला के गर्भ अवस्था के पांचवे मास में किया जाता है। ये शिशु के अध्यात्मिक, शारीरिक और मानसिक उत्थान के लिए किया जाता है। ईश्वर से, पैदा होने वाले शिशु के सुखमय जीवन, धर्म कार्यो में

रूचि और समाज कल्याण के लिए प्रार्थनां की जाती है।

सूर्य चन्द्रमा दर्शन (निष्क्रमण संस्कार)

प्रसूत के दिन समाप्त होने के पश्चात मां और शिशु को घर से बाहर लाया जाता है और नवजात शिशु को सूर्य और चन्द्रमा का दर्शन कराया जाता है। धारणा यह है कि सूर्य दर्शन करने से बच्चा तेजस्वी और प्रतापी बनता है और चन्द्रमा का दर्शन करने से बच्चे में शीतलता और सहन शक्ति बड़ती है। इस का दूसरा उद्देश्य यह भी है कि बहुत दिनों तक एक माता कठिन संधर्ष से गुज़रती है अब उसे भ्रमण की आवश्यकता है जिससे उसका और शिशु का स्वास्थ्य ठीक रहे ताकि वह घर गृहस्थी के काम काज संभाल सके ।

अन्नप्राशन संस्कार

शिशु के जन्म लेने के छः मास के अन्तर से बालक को अन्न खिलाया जाता है। अगर बालिका हो तो उसका पांचवे महीने में ही यह संस्कार किया जाता है। इस में धारणा यह है कि बालिका बालक से जल्दी बड़ी हो जाती है। इस संस्कार में पहले पूजा की जाती है और पूजा में रखा प्रसाद पहले शिशु को खिलाया जाता है।

कर्ण बेध संस्कार

लड़की और लड़के दोनों के कानों में छेद किया जाता है। कानों में छेद करने से शिशु बहुत सी बीमारीयों से बच जाता है। लड़की के लिए ऐसा करना अनिवार्य है। क्योंकि डेजहोर पहनने के लिए कानों में छेद होना चाहिए ।

७ अन्नप्राशन संस्कार (बच्चे में खाने की आदत डालना)

८ चूडा करम (बाल काटना)

६ कर्ण वेध संस्कार (कान को छेद करना)

१० उपनयन संस्कार (यज्ञोपयीत और मेखला का आरम्भ)

११ विद्यारम्भ (गुरुकुल में बालक का प्रवेश)

१२ समावर्तन (गुरुकुल से घर वापस आना)

१३ विवाह संस्कार

१४. केशांत संस्कार (घर घर जाकर लोगों को घर्म की शिक्षा देना और स्वंय साघना में रहना)

१५. अग्नि परिग्रह संस्कार (जीवन का यह समय केवल ईश्वर की याद में व्यतीत करना)

१६. अन्तेष्टि संस्कार (अन्तिम संस्कार मृत्यु के समय)

यह १६ संस्कार जीवन यात्रा के साथ जुड़े हुए है संस्कारों के पालन में अवहेलना करने पर इस के पाप गुरू पर चढ़ते हैं।

शिष्यम् पांप गुरूस्तथा

जैसा कि घर के सारे पाप और दोष घर के स्वृष्टट व्यकति को लगते है। जैसे प्रजा के बुरे कर्मो का दोष राजा पर लगता है। औरत की गलतियों का जिम्मेवार

मर्द होता है।

राजा राष्ट्र कृतं पांप

राज्ञं पापं परोहितः

भर्ता च स्त्रीकृतम् पापम्

शिष्य पापम् गुरूस्तथा ।।

अतः शास्त्रानुसार हर एक माता पिता पर कर्तव्य फर्ज है कि वह अपने बच्चों को संस्कार, नित्य नियम, पूजा साधना और योग की तरफ प्रेरित करें।



मंत्र का उच्चारण बार बार होता है।

उंवी सर्व जनेश्वरी भगवती
मातात्रपूणे श्वरी
वेणी नील समान कुन्तलहरी
नित्यात्राने श्वरी
र्सवान्दकरी दशाशुभ करी
काशी पुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपा वलम्बन करी
मातात्र पूंणेश्वरी ।।

हे जगत जननी, तुम सारे ब्रहमँड़ की रचयिता हो। हे माता अन्नर्शना तुम्हारे लम्बे केश किसी दरिया में लहरों की भांति लहराते हैं। नीले जवाहिर (रत्नों) की तरह चमकते है। तुम अन्नपूर्णा हो, प्रगति के पथ पर ले जाने वाली हों। इस बच्चे को अपनी छत्र छाया में रखो । अपना आशीर्वाद हमें दो ।

इस प्रकार बच्चे के कान में मंत्र शक्ति का प्रवाह किया जाता है। यहीं से संस्कारों की नींव रखी जाती है। अर्थात शिशु के संसार में आँखें खोलते ही संस्कार आरम्भ होते है।

'सोन्दर ' क्या है। क्या सोन्दर भी संस्कार है ?

'सोन्दर' कोई संस्कार नही अपितु परम्परा है। जब बच्चे की माता प्रसूति के दिन पूरे करती है तो उसको घर और रिश्ते की औरतें नहलाधुला कर आसन पर बिठाती हैं। भोजपत्र जला कर उस के सिर के ऊपर गोल दायरे में घुमाया जाता है। इसका अर्थ है कि प्रसूता, अशौच से मुक्त हुई। अग्नि का दर्शन करा के उसे पवित्र किया जाता है। यह मान्यता है कि भोजपत्रों का धुँआ कीट नाशक (Anti Germs) है। भोज पत्र के धुएँ से सारा घर कीटाणुओं से शुद्ध करने के बाद, सामन्य नियमित कर्म की अनुमति बहू को दी जाती है। इसके पश्चात रिश्तेदार औरतों और पड़ोस में रहने वाली नारियों के साथ सामूहिक भोज का प्रबंध किया जाता है।

मुण्ड़न संस्कार (चूढ़ाकर्म)

मुण्ड़न संस्कार आध्यात्मिक दृष्टि से तो उत्तम है ही। वैज्ञानिक दृष्टि से भी यह लाभदायक है। बच्चे के सिर पर जन्म के समय से ही एक प्रकार की माया लगी होती है, यह माया सिर में दो प्रकार से हानी करती है।

एक तो वह मसामों के ज़रिये बाहर की हवा को सिर में दाखिल होने से रोकती है दूसरे सिर में आया पसीना, बालों के कारण पूरे का पूरा बाहर नही निकलता । फिर यह गन्दा मवाद धीरे धीरे सिर में जमा होकर कई प्रकार की बीमारियों को आमन्त्रित करता है ।

अतः वैज्ञानिकों का मानना है कि बचपन में ही सिर के बाल बिल्कुल साफ करने चाहिए। इस से सिर के रोमकूप खुल जाते हैं। सिर के भीतरी हिस्सों में ठण्ड़ी हवा पहुँचती है जिस से दिमाग अच्छी प्रकार काम करने के योग्य बनता है। मसामों के खुलने से सिर में विषैले मवाद बाहर निकलते रहते है।

कश्मीरी पंण्ड़ित घरानों में 'मुण्ड़न' संस्कार बडी धूमधाम से मनाया जाता है। घर में साम वेद के मंत्रों का गायन 'हेन्जे' वनवुन की सूरत में गाया जाता है। रिश्तेदारों और पड़ोसियों को न्यौता दिया जाता है। लड़के की बाल कटाई के पश्चात उसको नहलाया जाता है। नानके से लाये हुए कपडे उसे पहनाये जाते हैं। बच्चे के गले में काला धागा बान्धा जाता है जिस पर चन्द्रमा या शंख की प्रतिमा बनी होती है।

इसी दिन से सिर पर चोटी रखने का शुभ मुहूर्त्त किया जाता है।

आमतौर से लोग अपने बच्चों का मुण्डन किसी तीर्थ स्थान पर करते हैं। जैसे कि मार्तण्ड़ , कपाल मोचन, जगन्नाथ अस्थापन अच्छन, अष्टभुजी माता सरथल, किशतवाड में शैल पुत्री तीर्थ , बारामुला आदि । वे लोग जिनको तीर्थ स्थानों पर जाने का समय नही मिलता अपने घरों में ही यह कार्य सम्पन्न करते हैं। इस संस्कार में पूजा अर्चना का भी विशेष महत्व होता है।



नाम कर्ण सस्कार

कश्मीरी पंड़ित उस सांस्कृतिक धारा से आंये है, जो कश्यप ऋषि अपने साथ सरस्वती नदी सें लेंकर शारिका पीठ तक स्थापित कर गये। इस सांस्कृतिक जीवनं का स्रोत "संस्कारों" से आरम्भ होता है। उन संस्कारों में भी नामकरण संस्कार सब से उत्तम और महत्वपूर्ण माना गया है। इस संस्कार को कश्मीरी में 'काहनेथर' कहते´ है। इस संस्कार में तीन बातों को समावेश है।

१. बच्चे को अपने पूर्वजों, बुजुर्गे और अपने सारे कुटुम्ब के महत्वपूर्ण नाम सुना दिए जाते है। ,

२. बच्चे को अपनी वंशावली का पता मिलता है जो आगे चल कर उसके लिए सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक, व्यावहारिक और साधना के रास्ते खोलता है।

३. बच्चे को पहली बार ' नारीवण' पहनाया जाता है। जिसका महत्व पहले ही बता चुके हैं।

नाम कर्ण संस्कार या ' काहनेथर' के बिना घर में कोई शुभ कार्य सम्पन्न नही हो सकता । शादी, यज्ञ,

हवन या किसी और मंगल कार्य में 'काहनेथर' को पहले अदा करना होता है। क्योंकि 'काहनेथर' न करने से घर पर अमंगल की छाया रहती है। काहनेथर का टालना गृहस्थ के लिए एक अभिशाप माना जाता है। नामकर्ण के दिन एक विशेष महत्वपूर्ण पूजा होती है। बच्चे को मन्त्रों के द्वारा अपने वँश से मिलाया जाता है। उसके व्यक्तित्व को पूर्ण अभिव्यक्ति मिले, इसके लिए ईश्वर से प्रार्थना की जाती है। सबसे महत्वपुर्न श्लोक गुरुजी उस बच्चे को सुनाते है।

अश्भा भव : (पत्थर की भांति दृढ़ बनो)
परशु भव : (कुल्हाड़ी की भांति शत्रु नाशक बनो)
हिरण्यभ् भवः (सोने के समान तेजस्वी बनो)
जीवेत् शरद्शतम् : (तुम सौ वर्ष तक जीवित रहो)

यदि हम गम्भीरता से संस्कारों का अध्ययन करें तो हमें आश्चर्य होगा है कि बच्चे के गर्भ में होने के साथ–साथ ही हमारे ऋषियों ने उस के लिए एक विशेष रचनात्मक कार्यक्रम बनाया है। एक अच्छा सामाजिक जीवन बिताने, समाज में अच्छा नाम कमाने, दूसरों के दुख दर्द में शरीक होने और अपनी आत्मा के कल्याण के बारे में जो उपाय बंताये है उस से मनुष्य जीवन का कल्याण निश्चित है।

यज्ञोपवीत

यज्ञोपवीत उस क्रिया का नाम है जिस से मनुष्य ईश्वर के समीप पहुँच जाता है। यज्ञोपवीत की क्रिया विधि–पूर्वक करने से साधक के मन में आनन्द का आभास होता है। ज्ञान की दृष्टि पैदा होती है। ईश्वर के साक्षात्कार का अनुभव होत है। प्रतिदिन विधि पूर्वक संध्या कार्यक्रम करने से मोक्ष के द्वार खुलते है। मनुष्य जीवन सफल होता है। साधक प्रतिदिन चमत्कार होते देखता है।

यज्ञोपवीत की कुँजी गायत्री मन्त्र है। यह संसार के तीनों तापों आध्यात्मिक, आदिभौतिक आंदिदेविक से मुक्ति पाने का बहुत बड़ा साधन है। चौबीस अक्षरों का गायत्री मन्त्र सर्वप्रसिद्ध है। यज्ञोपवीत में तीन तार है और गायत्री में तीन चरण है। "तत्सवितुर्–वरेण्यं" प्रथम चरण "भर्गो देवस्य धीमहि" द्वितीय चरण "धियो यो नः प्रचोदयात्" तृतीय चरण है।

यज्ञोपवीत गायत्री की मूर्तिमान प्रतिमा है। उस का जो संदेश मनुष्य जाति के लिए है उस के अतिरिक्त और कोई मार्ग नही जिस में भौतिक तथा सामाजिक

सुख शान्ति स्थिर रह सके।

गायत्री मन्त्र एक ऐसा कल्पवृक्ष है। इस को जो मांगो एक दम मिल जाता है।

गायत्री को पंचमुखी कहा जाता है। ये मुख है

१) ऊँ (२) भूर्भुवःस्वः (३) तत्सवितुर्–वरेण्यं (४) भर्गो देवस्य धीमहि (५) धियो यो नः प्रचोदयात्

शरीर भी पाँच तत्वों से बना है और आत्मा के भी पाँच कोष है। मिट्टी, पानी, वायु, अग्नि और आकाश के सम्मिभ्रण से देह बनती है ।

गायत्री के पाँच भाग है। तीन सूत्र, चौथी मध्य, ग्रंथियाँ, पाँचवा ब्रह्म ग्रन्थि ।

पाँच देवताओं के स्वरूप गायत्री मंत्र में है।

ऊँ अर्थात गणेश

व्याहृति अर्थात भवानी

गायत्री का प्रथम चरण : ब्रह्मा

द्वितीय चरण : विष्णु

तृतीय चरण : महेश

इस प्रकार यह पाँच देवता गायत्री के प्रमुख शक्ति

पुञ्च कहें जा सकते है।

यज्ञोपवीत को कश्मीरी में मेखला कहते है। मेखल वैदिक भाषा के भावार्थ अनुसार उस सद्‌बुद्धि को कहते है जिस से ईश्वरी ज्ञान प्राप्त होकर परमात्मा तक पहुँचने की सीढ़ी तैयार होती है इस सीढ़ी का प्रथम चरण गुरूधारण करना है। जो उस के मंत्र के द्वारा कान में कहता है। "तुम मेरे सत्नों का दुध पियो, तुम भी ईश्वर को उसी प्रकार पहचान लो जैसे मैने उस को पहचाना है।

इतिहास का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि मेखला की रस्म या संस्कार भारत में ही नही था अपितु "ऑट पन" का संस्कार पारसी लोगों में भी मौजूद है। कोई भी पारसी "ज़दंअविस्ता" जैसी पवित्र पुस्तकों को "औटपन" के बिना नही पढ़ सकता है और न ही मन्दिर में जा सकता है और न पाठ पूजा कर सकता है।

आज कल मेखला के कई नाम है जैसे जन्यो ड़ालना (योनि त्रावुन) उपायन (ब्रह्मचर्य का गुरू कुल जाना) उपनयन (वह साधन जिस से दूर की चीज़ निकट देखी जा सके अर्थात वह बुद्धि जिस से ईश्वर को

पहचाना जा सके) इसको गायत्री संस्कार भी कहते है। गायत्री मंत्र का बार बार ब्रह्मचर्य के क़ान में कहने का अर्थ है कि वह बार बार इस मंत्र को जाप करे ताकि एक समय स्वयं उस की सांसो से सोऽहंसो की ध्वनि पैदा हो जाये। इस को अजपा गायत्री भी कहते है।

यज्ञोपवीत कश्मीरी पँड़ितों की पहचान है। यज्ञोपवीत कश्मीरी पंड़ित के गले में न हो तो कोई नही कह सकता कि यह कश्मीरी पंड़ित है। यज्ञोपवीत के तीन ध ागे तीन ऋणों की याद दिलाते है।

(१) "अपने पूर्वजों का ऋण"

ब्रह्मचर्य को बार बार कहा जाता है तुम ऐसे काम करो जिस से तुम्हारे पूर्वजो का नाम रोशन रहे। इन में पिता, दादा, माँ, नानी, सास तथा सुसर । इन पूर्वजों के नाम प्रतिदिन तर्पण करना और उन के आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करना ।

(२) "ऋषियों का ऋण"

ब्रह्मचर्य को प्रण करना होता है कि मैं विद्या प्राप्त करूँगा अपने साहित्य और संस्कृति को बड़ावा दूँगा निष्काम भाव से लोगों की सेवा करूँगा और अपने को

सदा सामाजिक कार्यों के लिए तैयार रखूँगा। विधि पूर्वक नित्य नियम की पालना करूँगा ।

(३) "देव ऋण" इस का अर्थ है आध्यात्मिक उन्नति ।

मनुष्य को विधि पूर्वक जप, तप, ज्ञान, ध्यान, कीर्तन, मनन और श्रवण करना चाहिए । गुरू मंत्र का मन से मनन करना चाहिए । गुरू सेवा करके ईश्वर के समीप पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए ।

कश्मीरी पंड़ितों मैं यज्ञोपवीत संस्कार सब से उत्तम और अनिवार्य संस्कार है। अन्य जातियों में भी इस का प्रचलन है परन्तु इस पर वह अधिक बल नही देते है।

पंड़ितों की धारणा है कि यज्ञोपवीत धारण करने से मनुष्य द्विज बनता है अर्थात दूसरा जन्म धारण करता है ।

यज्ञोपवीत पहन कर ब्रह्मचय्र धार्मिक पहचान पाता है। अब वह पंड़ित बन जाता है और कर्मकांड़ करने का भागी बनता है। जब ब्रह्मचर्य यज्ञ समाप्त करके बाहर आता है तो वह कपड़े बदल कर अपने मित्रों, रिश्तेदारों और गुरू जी के साथ लेकर दरिया पर जाता है और ६ार की स्त्रियां "व्यूग" पर नाचती है और "हेन्ज़े" गीत गाती है।

यज्ञोपवीत सम्बंधी कुछ महत्वपूर्ण बातें:

जनिता चोपनता च यस्य विद्या प्रयच्छति

अन्नदाता भयत्राता पंच ते पितरः स्मृता

जन्म देने वाला, यज्ञोपवीत ड़ालने वाला, विद्या पढ़ाने वाला , अन्न देने वाला, भय से रक्षा करने वाला, यह मनुष्य के पाँच पिता है।

यज्ञोपवीत संस्कार कश्मीरी पंड़ितों का महत्वपूर्ण संस्कार है। कश्मीर का प्रत्येक पंड़ित यज्ञोपवीत की पूरी जानकारी रखता है। कश्मीरी पंड़ितों की संस्कृति यज्ञोपवीत के आसपास घूमती हैं। क्योंकि यह विद्या , तपस्या और ब्रह्मचर्य व्रत की पालना का शुभारम्भ है। इस यज्ञोपवीत यज्ञ के सम्बन्ध में कुछ जानकारी यहाँ दी जाती है। सम्भवतः यह जानकारी उन प्रेमियों के लिए महत्व का विषय होगा, जिनको इन चीज़ों की जानकारी नहीं हैं।

क्या यज्ञोपवीत और मेखला दो अलग चीज़े है ?

कश्मीरी पंडित यज्ञोपवीत को मेखला कहते है। यद्यपि यह दोनों अलग–अलग महत्व के विषय है मेखला

.उस धागे को कहते है जिसको आमतौर से ' ऑटपन' कहा जाता है। ऑटपन से ही ब्रह्मचर्य व्रत की पालना होती है। ऑटपन के प्रयोग से पेट को वायु (Gas) की बीमारी नही लगती है। इस से आप अनुमान लगा सकते है कि कश्मीरी पंड़ितो के पास ब्रह्मचर्य की पालना करना कितना महत्वपूर्ण और जीवनदायी व्रत है। कश्मीरी पंड़ित आदर्शों पर कितना बल देते आये है उन्होने ब्रह्मचर्य पालना को इतना महत्वपूर्ण माना है कि इसको यज्ञोपवीत के बराबर दर्जा दिया है और कश्मीर में यज्ञोपवीत डालने की रस्म को मेखला ही कहते है।

ऑट पन मूंजी नाम के घास से बनाया जाता है। यह एक प्रकार की औषधि है जिस को रस्सी बना कर, नाभि के नीचे पेट से बांधने पर मेदे के १२ रोग नष्ट हो जाते है। Nervous System ठीक होता है और ब्रह्मचर्य की पालना होती है। मूंजी की रस्सी के साथ ही लंगोट बाँधा जाता है। अब चूँकि मूंजी घास मिलती नही या लोगों के रहन सहन में नज़ाकत और तब्दीली आई है अतः आज मूंजी के बदले मोटे धागे का प्रयोग होता है।

मूंजी घास के बारे में चरक संहिता मे वर्णन है।

इस घास के ३६ गुण चरक ने गिने है। यह उत्तम औषधि है। उसका नाड़ी System और पाचन शक्ति को ठीक करने में महत्वपूर्ण योगदान रहता है । इस से ब्रह्मचर्य नियन्त्रण में रहता है। यह काम वासना को रोकने में बहुत बड़ी सहायता करती है। साधना करते समय साधक को आनन्द प्राप्त होता है।

यज्ञोपवीत कब आरम्भ करना चाहिये

'गर्भात् अष्टमें वर्षे'

बच्चे के जन्म लेने के आठवें वर्ष यज्ञोपवीत का संस्कार करना चाहिए । शास्त्रविधि के अनुसार यही वर्ष मेखला बाँधने और गुरू कुल की ओर जाने की तैंयारी करने का वर्ष है। गुरू कुल से वापस आकर ही बच्चे को गृहस्थ घर्म की पालना करनी चाहिएं।

यज्ञोपवीत वास्तव में गायत्री मंत्र का जाप सिखाने का एक Training School है। अब लड़के गुरू कुल तो जाते नही केवल रीति अनुसार गुरू कुल की सारी प्रक्रिया पूरी होती है। जिसका कोई अधिक आध्यात्मिक लाभ नही है। हां, यदि हम यज्ञोपवीत को आधुनिक समय की आवश्यकताओं के अनुसार गायत्री मंत्र सीखने

का और उसका जाप विधि पूर्वक करने का एक साधन माने तो भी उचित है। क्योंकि आज के समय में केवल महागायत्री मंत्र ही दुखों को नाश करने वाला, आध्यात्मिक प्रकाश को फैलाने वाला और सर्वसिद्धियों को देने वाला महा मंत्र है।

वेदों के अनुसार यज्ञो पवीत संस्कार को उपनयन कहा गया है। उप + नयनः उप नयन का अर्थ है नज़दीक नयन ले जाना अर्थात शिष्य को गरु के पास ले जाना।

महर्षि आपस्तम्ब का कथन है।

त्रैवर्णिक मुख्य संस्कारों मे सर्वप्रथम संस्कार 'उपनयन' है। उपनयन – संस्कार होने पर ही त्रैवर्णिक बालक द्विज कहलाता है । शस्त्रों का मत है कि इस संस्कार से बालक का विशुद्ध ज्ञानमय जन्म होता है। इस ज्ञानमय जन्म के पिता आचार्य तथा माता गायत्री हैं

'तमसो वा एष तमः प्रविशति यधविद्धानुपनयते यश्चाविद्धानिति हि ब्राह्मणम्। अर्थात् जिसका अविद्धान्

आचार्य (गुरू) के द्धारा उपनयन – संस्कार कराया जाता है,

कहा गया है –

'तस्मिप्रत्राभिजनविद्यासमुदेतं समाहितं संस्कर्तारमीप्सेत्।'

'अविच्छिन्नवेदवेदिसम्बन्धो कुले जन्म अभिजनः। षड्भिरैडंगः सहैव यथावदर्थज्ञानपर्यन्तमधीतो वेदो विद्या।'

अर्थात् वेद एवं वेदी (यज्ञों) से सम्बन्धित कुलमें जन्म लेनेवाले, षड्डागों एवं मीमांसाशास्त्र आदिके अध्ययन द्वारा वेर्दाथके परिज्ञाता तथा निषिद्ध कर्मोमें सावधान आचार्यको उपनयनमें अपना उपनेता गुरू बनाना चाहिये।

गोमिल स्मार्तकल्पके भाष्यकार नारायणने एक वचन उपस्थित कर यह बतलाया है कि इस उपनयन संस्कारद्वारा त्रैवर्णिक बालक अपनी कर्तव्य शिक्षाके लिये

गुरू, वेद, यम, नियम एंव देवताओं के समीप ले जाया जाता है, इसलिये इस संस्कारको उप (समीप) नयन (ले जाना) कहते है । प्राचीन समयमें उपनेता गुरूओं के पास शिष्यगण ब्रह्मचर्यपूर्वक कई वर्षोतक अध्ययन करते थे। उपनीत बालकको गुरूकुलवास तथा उध्ययन करनेसे शास्त्रों एवं अपने धर्मका पूर्णरूपेण परिज्ञान हो जाता था । जिसके फलस्वरूप वह विशुद्ध ज्ञान उपार्जित करके संसारिक कार्योको करते हुए भी अपने देशकी आध्यात्मिक शान्ति के उन्नत लक्ष्यको प्राप्त करता था । उपनयन संस्कारके लिये शास्त्रों में मुहूर्त निर्दिष्ट किये गये है। मुहूर्तका तात्पर्य है कि अध्येता की आधिदैविक परिस्थिति (जन्मकालिक ग्रहस्थिति) से उस समयकी आधिदैविक परिस्थिति अनुकूल बन सके, जिससे उसका अध्ययन सकुशल, निविधन एवं परिपुष्ट हो सके।

यज्ञोपवीत की बनावट

यज्ञोपवीत पहले पिता जी ब्रह्मचारी को डालते हैं। फिर गुरू जी अपना यज्ञोपवीत ब्रह्मचारी को पहनाते हैं। इस प्रकार ब्रह्मचारी के पास ६ सूत्रों वाला यज्ञोपवीत गले में ड़ाला जाता है। प्रत्येक सूत्र को मंत्रो द्वारा

जीवादान दिया जाता है। हिन्दू मान्यता के अनुसार गायत्री मंत्र बहुत कल्याण कारी मंत्र है। इसकी तुलना में कोई मंत्र वेदों में नही है।

गायत्री का अर्थ है

गाय + त्री

गाय : जो कोई इसका गान करता है

त्री : उसकी रक्षा करता है।

पाँच प्राणो की रक्षा । प्राण कौन से है।

व्यान : जो सारे अंगों में रहता है।

समान : नाभिस्थान में रहने वाला ।

उदान : कण्ठ में रहने वाला।

प्राण : हृदयस्थान में स्थित

अपान : गुधस्थान में

गायत्री इन पाँचों प्राणों की रक्षा करती है।

गायत्री का पहला अक्षर है 'ओम'

अ : ब्रह्म : सृष्टि पैदा करने वाला

उ : विष्णु : पालने वाला

म : रूद्र : अपने में लीन करने वाला

अर्धचन्द्र : चन्द्रमा

यज्ञोपवीत लड़कियों का क्यों नही होता है।

शास्त्रविधि के अनुसार यज्ञोपवीत लड़के और लड़की दोनों का होना कोई पाप नहीं, अपितु शुभ फलदायक है। अब प्रश्न यह है कि जब लड़की का यज्ञोपवीत होना कोई पाप नही फिर इसकी प्रथा क्यो नही ? वह इसलिये कि औरत का हर महीने कुछ समय के लिए अशौच रहता है। अतः अशौच की हालत में यज्ञोपवीत गले में रहना पाप है। बच्चे के जन्म होने पर ४० दिन तक एक माँ अशौच में रहती है अतः इन दिनों में भी यज्ञोपवीत धारण नही किया जा सकता । अब इसको विधि शास्त्रों ने यह निकाली है कि विवाह के दिन लग्न होने के समय ही लड़की का पिता अपनी लड़की के लिय रखे तीन सूत्र यज्ञोपवीत दुल्हा को पहनाता है। क्योंकि स्त्री पुरूष का अर्धशरीर है, इसलिए दुल्हे का यज्ञोपवीत दुल्हन को भी भागीदार बनाता है। अन्यथा औरत के लिए भी (कर्त्तव्य) है कि वह पूरी श्रद्धा के साथ नित्य नियम से महा गायत्री का जाप करें । महा गायत्री जाप के फल और इसके प्रभाव को प्रवचनों के माध्यम से दूसरी महिलाओं तक पहुँचाये।

सारे समाज के लिये वेद भगवान का उपदेश है

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।

देवा भगं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते ।। (ऋक्० १०। १६१। २)

अर्थात्, हे मनुष्यों ! जैसे सनातन से विद्यमान, दिव्य शक्तियों से संपन्न सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि आदि देव परस्पर अविरोध भाव से अपने–अपने कार्य को करते हैं, ऐसे ही तुमभी समष्टि–भावना से एकसाथ कार्यों में लग जाओ, एकमत होकर रहो और आपस में सद्भावं से बरतो।

यही नहीं, वेदमन्त्रों में तो समष्टि–भावना के व्यावहारिक रूप सहभोज और सहपानतक का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। जैसे –

सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे (यजु १८।१६)

अर्थात्, अपने साथियों के साथ में सह–पान और सह–भोज मुझे प्राप्त हों।

वेदों के अनेक मन्त्रों में ब्रह्मचारी और गृहस्थ का बड़ा हृदयस्पर्शी वर्णन मिलता है। अथर्ववेद के एक पूरे

सूक्त (११। ५) में ब्रह्मचर्य की महिमा का ही वर्णन है। जैसे –

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभति

तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः (अथर्व ० ११ । ५ । २४)

ब्रह्मचये।ण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणामिच्छंते ।। (अथर्व० ११। ५ । २७)

अर्थात्, ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करनेवाला ही प्रकाशमान ज्ञान–विज्ञान को धारण करता है। उसमें मानो सारे देवता वास करते हैं।

ब्रह्मचारी श्रम और तप से युक्त जीवन द्धारा सारी जनता को पोषण देता है।

ब्रह्मचर्य के ही तप से राजा अपने राष्ट्र की रक्षा में समर्थ होता है।

यहाँ स्पष्ट शब्दों में राष्ट्र की चौमुखी उन्नति के लिए और मानव–जीवन के विभिन्न कर्त्तव्यों के सफलतापूर्वक निर्वाह के हलए श्रम और तप द्धारा विद्या–प्राप्ति (= ब्रह्मचर्य) की आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है।

श्री चक्र

कहते है जिस माता या बहिन के सिर पर श्री चक्र की निशानी हो वह स्वयं शक्ति स्वरूप बन जाती है। जब वह माता जगत् अम्बा का यह श्लोक पढ़ती है तो सारे देवतागण और अष्ट सिद्धियाँ उसकी कयों में कुशलता पैदा करके सारे विघ्न समाप्त करती हैं।

दु:खार्णवे हि पतित शरणागतं या
चोद्धत्य सानयति धाम परं दयाब्धिः
विष्णु र्गजेन्द्रमिव भीतभयापहत्रीं
राज्ञी सदा भगवती भवतु प्रसन्ना

हे दया सागर माता जगत् अम्बा, आप की शरण में जो आता है, आप उसको दुखों के सागर से निकाल कर मुक्ति देती हो । जिस प्रकार नारायण ने उस भयभीत हाथी को दुख से छुटकारा दिलाया जिसको मगर ने पकडा था (स्वामी विद्याधर महाराज) संस्कृत श्लोक।

श्री चक्र धरण करना ही माता की र्शण में जाने का सिद्वान्त है।

श्री चक्र के यन्त्र को अपने सिर पर पहनने से शिव

और शक्ति का आर्शीवाद प्राप्त होता हैं सारे देवगण श्री चक्र धारण करने वाली माताओं और यज्ञ में शामिल भक्तजनों, रिश्तेदारों और पडोसियों पर सुख शान्ति ज्योति की वर्षा करते है। इस यन्त्र के सिर पर पहनने से यज्ञोपवीत में शामिल होने वालों पर ईश्वर कृपा और देवताओं का आर्शीवाद प्राप्त होता है।

टेकि पुच़ कैसे तैयार होती है।

तरंग के ऊपर लम्बी तथा बारीक कपडे की एक चादर सी पहनी जाती है। यह सिर से पैर तक लम्बी होती है। सिर पर इसका सिरा गोलाकार में होता है, जिस पर गुरू जी , शक्ति मंत्रो से कौसम (कोंग) के पानी से श्री चक्र की प्रतिमा बनाते हैं। यज्ञ में शामिल नज़दीकी रिश्तेदार औरतों के लिए यह श्री चक्र वाली लम्बी सी चादर पहननी आवश्यक होती है।

इस श्री चक्र के बिना यज्ञोपवीत सम्पन्न नही हो पाता । इसलिए कि जगत् जननी माता शारिका के आर्शीवाद के बिना कश्मीरी पंड़ित कोई कार्य नही करते।

अभीद क्या है।

आज शिक्षा जैसे क्षेत्र का व्यवसायीकरण हो चुका है। जिसके दुष्परिणाम हमारे सामनें हैं। विद्यार्थीयों में लम्पटता, अनुशासनहीनता, हिंसा और बदले की भावना निपट स्वार्थ, नशाखोरी और तनाव, आलस्य, जैसे दुर्गुण आम बात हो चुकी है। समाज जितना अधिक साधन सम्पन्न होता जा रहा है, उसी अनुपात में शिक्षा और ज्ञान के प्रति अवभानना बढ़ती जा रही है। लेकिन प्राचीन काल में ऐसा नही था । प्राचीन काल की शिक्षा व्यवस्था को देखकर प्राचीन चिंतकों का चिंतन मनन, आश्चर्य चकित कर देता है।

हिन्दुओं में चार वर्णो का विधान था। आज तो इस व्यवस्था का लोप हो रहा है और किया जा रहा है। लेकिन वह व्यवसाा कितनी वैज्ञानिक थी...... विद्या और ज्ञान जैसी जीवन की सर्वश्रेष्ठ संपदा समाज को देने का दायित्व ब्राहम्नों का था । और उनकी जीविका की व्यवस्था क्या थी। दान ग्रहण करना, भिक्षा पर अपना गुजारा चलाना । ऐसा किसलिए था ? क्योकि शिक्षा

और ज्ञान देने वाला स्वयं अहंकारी न हो जाए। क्योंकि पुराने लोग जानते थे कि अहंकार ही अंधेरा है। अहंकार ही अज्ञान है, तमस है। यही वह विभाजक तत्व है जो समाज को और व्यक्ति को तोडता है; जीवन के सत्य से साक्षात्कार करने से वंचित करता है। इसी कारण से समाज में, गुरू अथवा आचार्य को सर्वश्रेष्ठ सम्मान दिया जाता था लेकिन उसकी जीविका का आधत्र भिक्षा था। उसी व्यवस्था का प्रतीक रूप जो आज हमारे पास बचा है वह है ' अभीद'। यज्ञोपवीत के अवसर पर 'ब्रह्मचारी' 'अभीद' के रूप में माता पिता , बंधूबांधवो , मित्रों, पड़ोसीयों से भिक्षा ग्रहण करता है और उसे लाकर गुरू के चरणों मे अर्पित करता है। विद्या व्यक्ति के अहंकार से मुक्त करके , विनीत बनाती है, उसे उत्तरदायित्व ग्रहण करना सिखाती है। संक्षेप में विनम्रता का पाठ पढ़ाने के लिए अभीद की व्यवस्था है।

अमीद लेते समय ब्रह्मचारी के हाथ में तूत की सोटी होती है। इस का क्या कारण है। शास्त्रों में वंणन हुआ है कि ब्रह्मचारी के हाथ में पलाश की सोटी होनी चाहियं यह पलाश की सोटी शीतल प्रकृति की औषधि

जैसी है। जो ब्रह्मचर्य को दिन भर शीतल रखती है। मन के वेग को कम करती है। ब्रह्म्चारी को किसी की बुरी नज़र नही लगती है।

दूसरा कारण यह है कि ब्रह्मचारी को गुरूकुल पहुंचन के लिये जंगलों को पार करना होता था। अपने को जंगली जानवरों से बचने के लिये सोटी उस के हाथ में होनी चाहिये थी।।

पलाश की लकडी कश्मीर में कम मिलती है इस कारण तूत की लकडी प्रयोग में लाई जाती है।

तीसरा कारण यह है कि इस से ब्रह्मचारी का अहंकार समाप्त हो जाता है। जब वह डंडा लेकर अपने गुरूमहाराज के लिये एक सेवक की भांति उठ खडा हो.ता है, तो वह अहँकार रहित होकर वह ज्ञान की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है।

वारिदान क्या है।

वारिदान एक प्रकार का चूल्हा है जिसमें ३६ सुराख होते है। इन सुराखों के ऊपर छोटी छोटी घड़वियों में चावल पकाया जाता है। पके हुए चावलों से यज्ञ में पूजा होती है। इस चूल्हे को जलाने के लिए यजमान की कोई सगी बहन या बहन की लड़की होनी चाहिए। यह फलदायी , सुखदायी और ज्ञानदायी क्रिया है। इस कार्यक्रम को आरम्भ करने के लिए भी घर का कोई आंध्यात्मिक दृष्टि रखने वाला सदस्य होना चाहिए।

यह ३६ सुराख ३६ तत्वों को दर्शाते है। जिससे इस ब्रर्हम्ा०ड़ की रचना हुई है। इसे यज्ञोपवीत के दिन इसलिए प्रयोग में लाया जाता है ताकि इस महान यज्ञ में ३६ तत्वों और सारे ब्रह्माण्ड़ की पूजा हो सके। कहते है इस तन्त्र क्रिया का प्रभाव बालक पर सारी उम्र रहता है इस क्रिया से माता शक्ति का वरदान सारे घर को प्राप्त होता है। समस्त देवताओं का आर्शीवाद उस घर को प्राप्त है जिस घर में यज्ञोपवीत संस्कार की रस्म अदा की जा रही हो।

यह छत्तीस तत्व है

मन, बुद्धि, अहंकार, पांच, केर्मन्द्रियां, पाच ज्ञानेन्द्रियां ओर उनकी तन्मात्राएं आदि। इन तत्वों की व्याख्या सांख्यं शास्त्र में हुई है। जन कि सांख्यमात्र केवल पच्चीस तत्वों कस निरपन करता है।

इन तत्वों की पूजा यज्ञोपवीत के दिन सम्पन्न होती है। इस तान्त्रिक क्रिया में शक्ति स्वरूपा बहन का होना अनिवार्य है।

वारिदान के ऊपर बने सुराखों में तैयार होने वाले अन्न से और उनकी तान्त्रिक पूजा से यह सारे तत्व शान्त रहते हैं । यह क्रिया घर की सुख शान्ति, और साधना के लिए अति अत्यावश्यक है। यह ब्रह्मचारी (मेखलि महाराज) के लिये शान्ति ज्ञान मार्ग तथा ईश्वर प्राप्ति का तान्त्रिक अमल है।

'टेकि पूच' का क्या महत्व है ?

यज्ञोपवीत की क्षृखंला में टेकि पूच का बनाना और इसका प्रयोग क्रिया के अनुसार करना फलदायी सुखदायी और शान्ति देनेवाला है । टेकि पूच का प्रयोग मन की उथल पुथल को शांत करने के लिए होता है।

शास्त्र कथन है कि

जब मुझमें अशन्ति पैदा होती है और संसार के दुख परेशान करने लगते हैं, उस समय जब मैं मन की गहराइयों से आपको याद करता हूँ तो आप मुझ पर आनन्द और अमृत की बौछार करते है। इसी सुख और शांति का प्रतीक टेकि पूच़ है आप जरा इसको ठींक से देखिये । इस पर श्री चक्र बना होता है, जो माता शक्ति के अनुग्रह को दर्शाता है ।

'टेकि पूच़ 'श्री चक्र की निशानी है। श्री चक्र कश्मीरी पंड़ितों की साधना का केन्द्र रहा है।

दूसरा कारण

इस महा यन्त्र को धारण करने वाली औरतें दूर से ही पहचानी जाती है कि इन औरतों का इस महायज्ञ से सीधा सम्बन्ध है।

तीसरा कारण

'पूच़' का सिर पर बाँधना कश्मीरी सभ्यता पर नाग मत के प्रभाव को दर्शता हैं नाग और पिशाच कश्मीर के आदिवासी कबीलों में गिने जाते है। नाग, पिशाचो से अधिक सभ्य , स्वस्थ और खूबसूरत थे । इनका अपना सांस्कृतिक हरा भरा जीवन था । शास्त्रों में प्रमुख नाग सरदारों का उल्लेख इस प्रकार मिलता है जैसे : वासुखकि नाग, नील नाग, शेष नाग , एरावत नाग, धमानी नाग, काली नाग, गोवर्षण नाग आदि नाग सरदारों की महानता में बहुत से श्लोक लिखे गये है।

कश्मीर में राजा नील और चन्द्रदेव के बीच एक समझोता हुआ जिसके कारण कश्मीरी पंड़ितों को कुछ विशेष त्यौहारों पर नागों को मज़ेदार पकवान जैसे 'मांजहोर तहर', 'गाड़बता' और रिवचड़ी' खाने को मिली और इसके बदले नाग ब्राह्मणों की रक्षा करते थे।

उनको पिशाचों और दूसरे आक्रमणकारियों से बचाते थे। धीरे धीरे नागों की संस्कृति का प्रभाव कश्मीरी पंडितों की संस्कृति पर पड़ा । इस प्रकार 'पूच़' के ऊपर वासुकि नाग का फन दर्शाया गया है। इसके नीचे की दो लटें शिव और शक्ति का प्रतीक हैं। इसी प्रकार दूसरी चुनरी जो पूच़ के नीचे होती है उसको नागिन का प्रतीक माना गया है । इसकी सजावट 'पूच़' से बहुत अच्छी होती है। यह 'पूच़' से ज्यादा कीमती होती है। इसको 'जूज' कहते हैं।

शास्त्रों का कथन है कि जिस घर की औरतें तरंग के ऊपर 'पूच़' का प्रयोग करती हैं, उस घर के सदस्यों को तीन प्रकार के सुख मिलते हैं।

आयुर्बलम् यशो

इससे नाग प्रसन्न होते है और घर के लोगों की आयु बढ़ाते है । उन्हे बलवान बनाते हैं। उनका यश बड़ाते है।

संध्या क्या है ?

'यज्ञोपवीत संस्कार का दूसरा भाग'

संध्या संस्कार यज्ञोपवीत के साथ ही जुड़ा हुआ संस्कार है। इसकी पालना प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक है। संध्या उपासना मनुष्य को अपने प्राकृतिक स्वरूप में लाती है। संध्या ईश्वर प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। संध्या करने से मनुष्य की भीतरी और बाहरी शुद्धि होती है। मन को आनंद और शांति मिलती है। संध्या उपासना वैदिक धर्म का सब से महत्वपूर्ण भाग है।

कश्मीरी पँडितों के लिए संध्या उपासना सर्वोपरी है। यह जाति कश्यप ऋषि के युग से आजतक आस्तिक स्वभाव की है। कश्मीर के ऋषियों, सन्तों और योगियों ने संध्या उपासना करके आश्चर्यजनक सिद्धियाँ प्राप्त की हैं।

संध्या - प्रकरण

संध्याका समय : सूर्योदय से पूर्व जब कि आकाशमें तारे भरे हुए हों, उस समयकी संध्या उत्तम मानी गयी है। ताराओंके छिपनेसे सूंर्योदयतक मध्यम और सूर्योदयके बादकी संध्या अधम होती है।

सांयकालकी संध्या सूर्यके रहते कर ली जाय तो उत्तम, सूर्यास्तके बाद और तारोंके निकलनेके पूर्व मध्यम और तारा निकलनेके बाद अधम मानी गयी है।

संध्याकी आवश्यकता

नियमपूर्वक जो लोग प्रतिदिन संध्या करते हैं, वे पापरहित होकर सनातन ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं।

संध्यामुपासते ये तु सततं संशितव्रताः ।
विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम् ।।

(अत्रि)

इस पृथ्वीपर जितने भी स्वकर्मरहित द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) हैं, उनको पवित्र करनेके लिये ब्रह्माने संध्याकी उत्पत्ति की है। रात या दिन में जो भी अज्ञानवश विकर्म हो जायँ, वे त्रिकाल- संध्या करनेसे नष्ट हो जाते है।

संध्या करने से मनुष्य में चार प्रकार की उन्नति होती है। उसे अपने अन्दर प्रकाश का आभास होने लगता है। उसकी बनावट या आन्तरिक जगत में उसकी साधना नये रूपों को जन्म देती हैं। प्राणायाम की गतिविधियों से उसकी आत्मशुद्धि होने के साथ साथ

नाड़ी जाग्रण की अवस्था प्राप्त होती है।

संध्योपासना - विधि

संध्योपासन द्विजमात्रके लिये बहुत ही आवश्यक कर्म है। इसके बिना पूजा कार्य करनेकी योग्यता नहीं आती। अतः द्विजमात्रके लिये संध्या करना आवश्यक है।

स्नानके बाद दो वस्त्र धारणकर पूर्व, ईशानकोण या उत्तरकी ओर मुँह कर आसनपर बैठ जाय। आसनकी ग्रन्थि उत्तर दक्षिणकी ओर हो। तुलसी, रूद्राक्ष आदिकी माला धारण कर ले। दोनों अनामिकाओंमें पवित्री धारण कर लें। गायत्री मन्त्र पढ़कर शिखा बाँधे तथा तिलक लगा ले और आचमन करे –

आचमनः– ॐ केशवाय नमः , ॐ नारायणाय नमः, ऊ माधवाय नमः– , इन तीन मन्त्रोंसे तीन बार आचमन करके '**ॐ हृषीकेशाय नमः** ' इस मन्त्रको बोलकर हाथ धो ले।

पहले विनियोग पढ़ ले, तब मार्जन करे (जल छिड़के)।

मार्जन विनियोग मन्त्र ॐ अपवित्रः पवित्रो वेत्यस्य वामदेव ऋषिः, विष्णुर्देवता, गायत्रीच्छन्दः हृदि पवित्रकरणे विनियोगः।

इस प्रकार विनियोग पढ़कर जल छोड़ें तथा निम्नलिखित मन्त्रसे मार्जन करे (शरीर एवं सामग्रीपर जल छिड़के)

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।

तदनन्तर आगे लिखा विनियोग पढ़े : '**ॐ प्रथ्वीति मन्त्रस्य मेरूपृष्ठ ऋषिः, सुतलं छन्दः, कूर्मो देवता आसनपवित्रकरणे विनियोगः** ।' फिर नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर आसनपर जल छिड़के –

ॐ पृथ्वि ! त्वया धृता लोका देवि! त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धरय मां देवि ! पवित्रं कुरु चासनम्।।

संध्याका संकल्प- इसके बाद हाथमें कुश और जल लेकर संध्याका संकलप पढकर जल गिरा दे–

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्य.... उपात्तदुरितक्षयपूर्वकश्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थ संध्योपासन

करिष्ये।'

आचमन – इसके लिये निम्नलिखित विनियोग पढ़े

ॐ ऋतं चेति माधुच्छन्दसोडघमंर्षण ऋषिरनुष्टुप् छन्दो भाववृत्तं दैवतमपामुपस्पर्शने विनियोगः[3] । फिर नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर आचमन करे।

ॐ ऋतं च सत्य चाभीद्धात्तपसोडध्यजायत। ततो रात्र्यजायत। ततः अर्णवः । समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि द्विश्वस्य मिषतो वशी । सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।

ऊँकारस्य ब्रह्मा ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः अग्निः परमात्मा देवता शुक्लो वर्णः सर्वकर्मारम्भे विनियोगः।'

फिर दायाँ पाँव, और इसके पश्चात हाथ की हथेली पर पानी भर कर मन्त्र आरम्भ करना चाहिए।

गंगा प्रयाग गयनैमिषपुष्करादि ....

फिर इस अंजलि भरे पानी से मुँह पर पहला छींटा मारना चाहिए ।

तीर्थस्नेयं तीर्थमेव समानाना ....

यह मंत्र तब तक उच्चारण करते रहना चाहिए जब तक कि मुँह पूरी तरह धोया नही जाता । फिर यज्ञोपवीत

को दाँया अंगूठे और बायें तर्जनी में रखकर तीन बार महा गायत्री मंत्र का उच्चारण होना चाहिए । फिर देवताओं का स्मरण करते हुए हाथ में जल लेकर मंत्र उच्चारण करना चाहिए जिस में अग्नि देवता, इन्द्र देवता और दूसरे कल्याणकारी देवताओं का ध्यान करना होता है।



नमो अग्नये

नमः इन्द्राय

नमो वरूणाय

नमो वारूण्ये

नमो डपाँ पतये

नमोडदम्य:

जल की छींटे पृथ्वी पर डालकर थोडी सी मिटटी से अंग र्स्पश करते हुए धरती माता से उन पापों के लिए क्षमा याचना माँगे जो अन जाने में मनुष्य से होते है।

मृत्तिके हरमे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम
वाचा कृतं कर्म कृतं मनसा यततचिन्तितम
मृत्तिके देहि में पुष्टिं त्वयि र्सवं प्रतिष्टितम
त्वया हन्तेन पापेन ब्रह्म लोके वृजाम्यहम।

गायत्री जपका विधान

षडङ्ग:न्यास – गायत्री जपके पूर्व षडङ्ग:न्यास करनेका विधान है। अतः आगे लिखे एक एक मन्त्रको बोलते हुए चित्रके अनुसार उन उन अगोंका स्पर्श करे ।

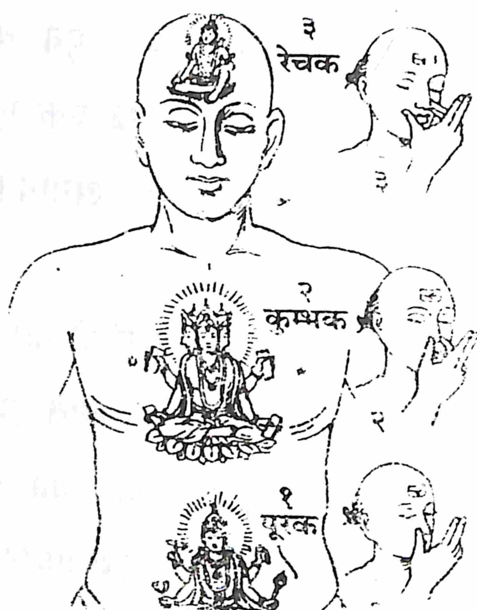
फिर देवताओं, पितरों और ऋषियों का तर्पण करने को कहा गया है। ऋषियों का तर्पण करते हुए यज्ञोपवीत अँगूठे में रखना चाहिए । देवताओं का तर्पण करते समय यज्ञोपवीत दायें बाजू में और पितरों का तर्पण करते हुए यज्ञोपवीत बायें बाजू में रखना चाहिए । फिर आसन पर मन्त्रों द्वारा जल से शुद्धता करके प्राणायामः आरम्ब करेँ।

(ख) **प्राणायामकी विधि**- प्राणायामकेतीन भाग होते हैं।

१. पूरक २. कुम्भक और ३. रेचक

१. अँगूठेसे नाकके दाहिने छिद्रको दबाकर बायें छिद्रसे श्वासको धीरे धीरे खींचनेको 'पूरक प्राणायाम' कहते है। पूरक प्राणायाम करते समय उपर्युक्त मन्त्रों का मन से उच्चारण करते हुए नाभिदेशमें नीलकमलके दलके समान नीलवर्ण चतुर्भुज भगवान् विष्णुका ध्यान

करे।



२. जब साँस खींचना रूक जाय, तब अनामिका और कनिष्ठिका अँगुलीसे नाकके बायें छिद्रको भी दबा दे। मन्त्र जपता रहे। यह 'कुम्भक प्राणायाम' हुआ। इस अवसरपर हृदयमें कमलपर विराजमान लाल वर्णवाले चतुर्मुख ब्रह्माका ध्यान करे।

प्राणायाम मन्त्र

ॐ भूः ॐ भूवः ॐ स्वः ऊ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम्।

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो ये नः प्रचोदयात्। ॐ आपे ज्योती

रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।(तै० आ० प्र० १० अ० २७)

चौबीस मुद्राये कौन सी है । गायत्री जप करने से पूर्व २४ मुद्राये और अँग न्यास करना आवश्यक है। (याज्ञवल्क स्मृति)

भव, विश्वामित्राशापाद्विमुक्ता भव, शुक्रशापाद्विमुक्ता भव।

जपके पूर्वकी चौबीस मुद्राएँ

सुमुखं सम्पुट चैव विततं विस्तृतं तथा।
द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुष्प्ज्जलिकं तथा।
शकटं यमपाशं च ग्रथितं चोन्मुखोन्मुखम्।।
प्रलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यः कूर्मो वराहकम्।
सिंहाक्रान्त महाक्रान्तं मुद्वरं पल्लवं तथा।
एता मुद्राश्चतुर्विंशज्जपादौ परिकीर्तिताः।।

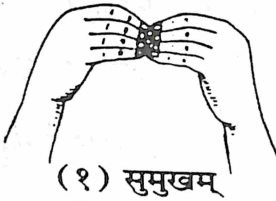
(देवीभ० ११ २७ ११ १०१, याज्ञवल्वयस्मृति, आचाराध्याय, बालम्भटटी टीका)

भव, विश्वामित्रशापाद्विमुक्ता भव, शुक्रशापाद्विमुक्ता भव ।

जपके पूर्वकी चौबीस मुद्राएँ

सुमुखं सम्पुटं चैव विततं विस्तृतं तथा ।
द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुष्पञ्चमुखं तथा ॥
षण्मुखाऽधोमुखं चैव व्यापकाञ्जलिकं तथा ।
शकटं यमपाशं च ग्रथितं चोन्मुखोन्मुखम् ॥
प्रलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यः कूर्मो वराहकम् ।
सिंहाक्रान्तं महाक्रान्तं मुद्गरं पल्लवं तथा ॥
एता मुद्राश्चतुर्विंशज्जपादौ परिकीर्तिताः ॥

(देवीभा० ११ । १७ । ९९-१०१, याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय, बालम्भट्टी टीका)



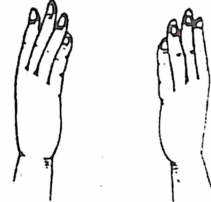
(१) सुमुखम्



(२) सम्पुटम्



(३) विततम्



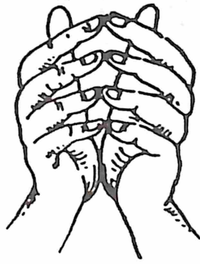
(४) विस्तृतम्



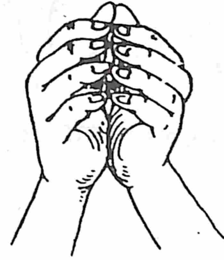
(५) द्विमुखम्



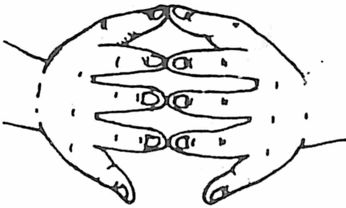
(६) त्रिमुखम्



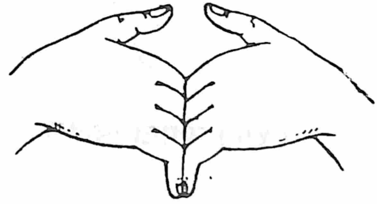
(७) चतुर्मुखम्



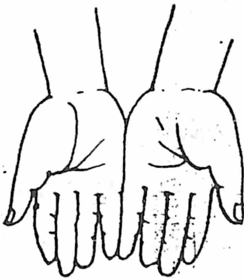
(८) पञ्चमुखम्



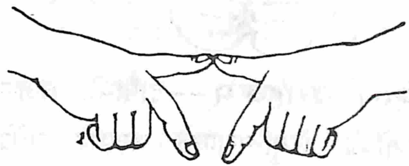
(९) षण्मुखम्



(१०) अधोमुखम्



(११) व्यापकाञ्जलिम्



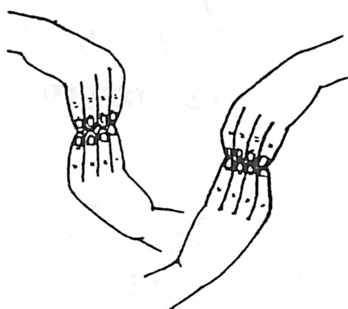
(१२) शकटम्



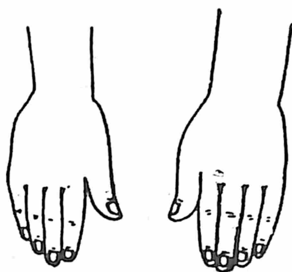
(१३) यमपाशम्



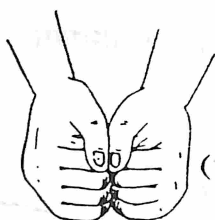
(१४) ग्रथितम्



(१५) उन्मुखोन्मुखम्



(१६) प्रलम्बम्



(१७) मुष्टिकम्



(१८) मत्स्यः

(२०) **वराहकम्**—दाहिनी तर्जनीको बायें अँगूठेसे मिला, दोनों हाथोंकी अँगुलियोंको परस्पर बाँधे। (२१) **सिंहाक्रान्तम्**—दोनों हाथोंको कानोंके समीप करे। (२२) **महाक्रान्तम्**—दोनों हाथोंकी अँगुलियोंको कानोंके समीप करे। (२३) **मुद्गरम्**— मुट्ठी बाँध, दाहिनी कुहनी बायीं हथेलीपर रखे। (२४) **पल्लवम्**—दाहिने हाथकी अँगुलियोंको मुखके सम्मुख हिलाये।

(१९) कूर्मः



(२०) वराहकम्



(२१) सिंहाक्रान्तम्



(२२) महाक्रान्तम्





(२३) मुद्गरम्



(२४) पल्लवम्

गायत्री-मन्त्रका विनियोग—इसके बाद गायत्री-मन्त्रके जपके लिये विनियोग पढ़े—**ॐकारस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दः परमात्मा देवता, ॐ भूर्भुवः स्वरिति महाव्याहृतीनां परमेष्ठी प्रजापति-ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि अग्निवायुसूर्या देवताः, ॐ तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्रऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता जपे विनियोगः ।**

इसके पश्चात् गायत्री-मन्त्रका १०८ बार जप करे। १०८ बार न हो

अंग न्यास क्या है। उपासना में इसका महत्व क्या है ?

मुद्राओं के पश्चात अंग न्यास आरम्भ होता है। अंग न्यास का अर्थ है कि शरीर के भिन्न भिन्न अंगों को मंत्रों द्वारा साधना और योगाभ्यास के लिये शुद्ध करना। उससे मन वश में रहता है। पाचन शक्ति ठीक रहती है। शरीर योग बल प्राप्त करने और तपस्या प्रारम्भ करने की स्थिति में आ जाता है। इस से शरीर के भिन्न भिन्न भागों का व्यायाम होता है और शरीर कार्य करने की क्षमता प्राप्त करता है।

आध्यात्मिक क्रिया का महत्वपूर्ण भाग अंग न्यास है। इससे शरीर के भिन्न भिन्न भागों का व्यायाम होता है। और शरीर कार्य क्षमता प्राप्त करता है। यह आध यात्मिक क्रिया सब से पहले नाभि से आरम्भ हेती है विष्णु की नाभि से ही ब्रह्मा की उत्पति हुई। जो ब्रह्मा सृष्टि कर्त्ता है वास्तव में विष्णु के शरीर का ही एक हिस्सा है और योग साधना में नाभि का भी काफी महत्व है।

अंग न्यास करने से पहले पालथी मार कर अंग

सूर्ये प्रदक्षिणा—

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे ॥

भगवान्‌को जपका अर्पण—अन्तमें भगवान्‌को यह वाक्य



(२) ज्ञानम्



(१) सुरभिः



(३) वैराग्यम्



(४) योनिः

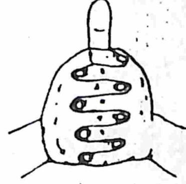


(५) शंखः



(६) पङ्कजम्

(७) लिङ्गम्





(८) निर्वाणम्

न्यास की क्रिया आरम्भ करनी चाहिए । पहले दोनों हाथों से नाभि को स्पर्श करते हुए पढ़ना आरम्भ होता है।

अ नाभौ अर्थात नाभि को स्पर्श ।

उ हृदि (दिल को)

म शिरसि (सिर को)

भ पादयो (पैरों को)

ऊँ भू अंगुष्ठाम्यां नमः (अँगूठे को)

भवः तर्जनीभ्यां नमः (पहले हाथ को उंगलह को)

स्वः मध्यमाभ्यां नमः

महः अनाभिकाभ्यां नमः

तपः करतल कर पृष्टाभ्यां नमः

संध्या प्रकरण

सके तो कम से कम १० बार अवश्य जप किया जाय । संध्यामें गायत्री मन्त्रका करमालापर जप अच्छा माना जाता है, गायत्री मन्त्रका २४ लक्ष जप करनेसे एक पुरश्चरण होता है। जपके लिये सब मालाओंमें रूद्राक्षकी माला श्रेष्ठ है।

शक्तिमन्त्र जपनेकी करमाला : चित्र संख्या १ के अनुसार अङ्क एकसे आरम्भकर दस अङ्कतक अँगूठेसे जप करने से एक करमाला होती है (दे० भा० ११। १२। १२) तर्जनीका मध्य तथा अग्रपर्व सुमेरू है। इस प्रकार दस करमाला जप करनेसे जप संख्या एक सौ हो जायगी, पश्चात् चित्र संख्या २ के अनुसार अडग १ से आरम्भ कर अडग ८ तक जप करनेसे १०८ की एक माला होती है।

चित्र संख्या १ चित्र संख्या २

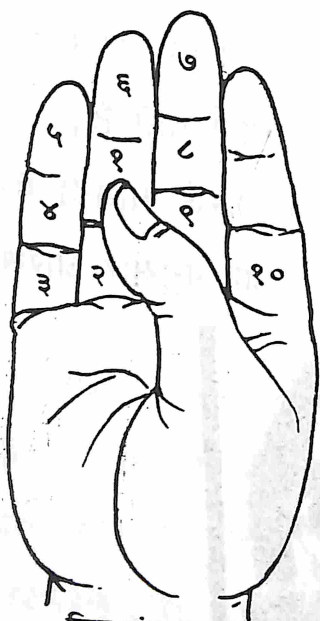
इसी प्रकार बाकी न्यास भी सम्पूर्ण होते है।

इस के उपरान्त आसन धारण करके गायत्री मंत्र का जाप विधि अनुसार और गुरूआज्ञा अनुसार आरम्भ

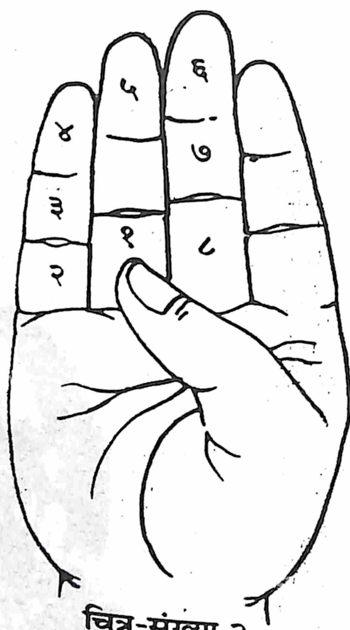


सके तो कम-से-कम १० बार अवश्य जप किया जाय। संध्यामें गायत्री मन्त्रका करमालापर जप अच्छा माना जाता है[1]. गायत्री मन्त्रका २४ लक्ष जप करनेसे एक पुरश्चरण होता है। जपके लिये सब मालाओंमें रुद्राक्षकी माला श्रेष्ठ है।

शक्तिमन्त्र जपनेकी करमाला—चित्र-संख्या१ के अनुसार अङ्क एकसे आरम्भकर दस अङ्कतक अँगूठेसे जप करनेसे एक करमाला होती है (दे० भा० ११।१९।१९) तर्जनीका मध्य तथा अग्रपर्व सुमेरु है। इस प्रकार दस करमाला जप करनेसे जप-संख्या एक सौ हो जायगी, पश्चात् चित्र-संख्या २ के अनुसार अङ्क १ से आरम्भ कर अङ्क ८ तक जप करनेसे १०८ की एक माला होती है।



चित्र-संख्या १



चित्र-संख्या २

१-पर्वभिस्तु जपेद् देवीं माला काम्यजपे स्मृता।
गायत्री वेदमूला स्याद् वेदः पर्वसु गीयते॥

देव गौन

देवगौन का अर्थ है देवताओं को आमंत्रित करना। यज्ञोपवीत और विवाह के अवसर पर देवताओं को आमंत्रित करना, उनकी पूजा सत्कार करना व उनका आर्शीवाद ग्रहण करना एक अनिवार्य परंपरा है।

कहते हैं लड़की का जन्म–अशौच देवगौन पर ही समाप्त होता है जबकि लड़के का जन्म–अशौच जातकर्म संस्कार के समय समाप्त हो चुका होता है। यद्यपि कन्या पक्ष और वर पक्ष दोनो ही देवगोन की पंरपरा का निर्वाह करते हैं। लेकिन कन्यापक्ष के लिए उपरोक्त कारण से इसका अधिक महत्त्व है। मंत्रो द्वारा देवताओ और शक्ति के समस्त स्वरूपों का आवाहन करके उनके द्वारा लड़की को आर्शीवाद मिलता है। तभी उसके मासिक दोष और जन्म अशौच की निवृत्ति होती है।

देवगौन के अवसर पर, लड़की को सभी वस्त्राभूषण पहना कर यज्ञ पर बिठाया जाता है। इस यज्ञ में लड़की के लिए लाए गए सतरात के बर्तनों का ही प्रयोग होता है। देवगौन के समय सतरात और अन्य वस्त्राभूषण देकर पिता कन्या के ॠण से मुक्त हो जाता है। यह भी

कहा जाता है कि यदि लड़की का विवाह गंधर्व विधि से भी हो फिर भी देवगौन करना बहुत आवश्यक है।

देवगुन यज्ञ की एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि इस अवसर पर कन्या पहली बार तरंग का प्रयोग करती है, जो शायदः इस संस्कृति का प्राचीनतम प्रतीक चिन्ह है।

कहते है महर्षि कश्यप की तेरह पत्नियों में से कद्रू नाम की पत्नी के गर्भ से नागों की उत्पति हुई थी । यह नाग कश्यप की अन्य पत्नियों के गर्भ से उत्पन्न दैत्यों, आदित्यों, दानवों और रूद्रों के सजातीय बन्धु आर्य थे जिन्हे महर्षि कश्यप ने कालांतर में कश्मीर में लाकर बसाया था। यह तरंग उसी नागवंश का प्रतीक है जिसे आजतक कश्मीरी स्त्रीयां तरंग के रूप में धारण करती हैं।

तरंग के चार भाग होते हैं। पहला है 'कल्पुश'। यह गोलाकार टोपी जैसा होता है। यह लाल रंग के कपडें से बना होता है। इसके उपर एक सफेद रंग का चकौर टुकड़ा बंधा होता है। जिसे 'तरंग' कहा जाता है। इसी के साथ एक एडी तक लम्बा 'पूच' होता है। माथे पर

सिलोलाइट जैसा सफेद रंग का पटा सा होता है। जिसे 'शीशलाठ' कहा जाता है। इस पूरे प्रतीक चिन्ह का आकार सर्प जैसा होता है। हो सकता है प्राचीन काल में यह मुकुट के रूप में प्रयुक्त होता हो, जो भी हो । लम्बा फिरन और तरंग और पूच में इन दुल्हनों की शोभा ही अलग होती है।

देवगुण लड़के का हो या लड़की का दोनो को इस अवसर पर गृहस्थ धर्म की परंपराओं के बारे में सचेत किया जाता है। उद्धाहरण के लिए वर को देवगुण के अवसर पर गुरू जी जो पहला श्लोक सुनाते हैं वह है

दुराचारी दुरादृष्टि दुरावासी च दुर्जन

यामेत्री क्रियते पुसां सातु शीघ्रति नश्यती

अर्थात बुरे आचरण वाले , बुरी दृष्टि वाले , बुरे स्थान पर रहने वाले और बुरे लोगो का संग करने वाले शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

इसी प्रकार वधू पक्ष को भी गुरू जी गृहस्थ के संबध में कई उपदेश देते हैं।

कलपुश लाल रंग की टोपी जैसी होती है। जिस की गोलाई माता शारिका के श्रीचक्र को दर्शाती है। यह

गोला कार श्री चक्र के बाहरी भाग को दर्शाता है। इस के ऊपर सफेद कपडा लगा होता है, जो सुंदरता, सुख, और शांति को दर्शाता है। सिलालाईट का रिबन शेष नाग का प्रतीक है। और पूच वासुक नाग को दर्शाती है। पीछे से दो लटें शिव और शक्ति की प्रतीक है। तरँग एक साथ नाग, शिव और शकित के प्रभाव को दर्शाती है।

इसी श्री चक्र को धारण करने वाली दुल्हन यज्ञमंडप में प्रवेश करती है।



दैवगुणन के भारे में धांमिक वेदि

कश्मीरी पंड़ितो का विवाह संस्कार पहले धार्मिक प्रक्रिया से होता था । अब इस में सामाजिक, आर्थिक भौतिक तथा मानसिक बातें भी मिलाई गई है। विवाह संस्कार कई भागों में बट गया है। जैसे 'मल्मऽज़', मेहन्दी रात, दैवगुण, लग्न, फ्युर लठ् और सतरात । शास्त्र विधि के अनुसार दैवगुण पहला धार्मिक कार्यक्रम है जिस के बिना न यज्ञोपवीत और न विवाह सम्भव है । दैवगुण के बिना विवाह और यज्ञोपवीत पाप माना जाता है। लग्न से पहले दुल्हन शक्ति के सात रूपों की पूजा करती है ताकि उस का जीवन सफल बने । इन सात शक्तियों के नाम भोग भी रखा जाता है। इन को मानत्रिका कहते है। इन सात इष्ट देवियों के नाम इस प्रकार है।

अन्नमति : अन्न देने वाली

दान्नी : सब सुख देने वाली

सर्वेश्वरी : सब ऐश्वर्य देने वाली

एकान्तवांसिनी : एकान्त का सुख देने वाली

जो अपने ही स्वरूप में रहने वाली एकान्तवासी माता

है।

सर्वेश्वर : अन्न, धन, सुख शांति और ऐश्वर्य बड़ाने वाली ।

शक्ति के यह स्वरूप संसार के कण कण में समाये हुए है। कश्मीर में पहले महिलाओं को मात्रिका ही कहते थे। इस से औरत का समाज में उसके आदर का पता चलता है।

दैवगुण देने के सात दिन के अन्दर अन्दर विवाह होना चाहिए अन्यथा दूसरी बार दिवगोण देना पड़ता है।

'दिवगोण' से पहले दुल्हन को नहलाया जाता है। यह रस्म पाँच कन्याओं से पूरा होता है। यह कन्यायें पाँच महाभूतों, ज्ञान के पाँच आधारों, जीवात्मा के पाँच मौलिक बातों का चिन्ह है। यह कन्यायें जीवन मुक्त नारी वर्ग की मुक्त आत्माओं का चित्र समझी जाती है। जिन के नाम है। अहिल्या, द्रौपदी, तारा, सीता और मन्दोदरी ।

पाँच महाभूत, अग्नि, पृथ्वी, वायु, जल और आकाश, पहले चार कन्यायें दुल्हन के ऊपर कपड़ा फैलाती है और पाँचवी कन्या दुल्हन के ऊपर जल ड़ालती है जिस

में फुल, चावल, दूध, घी, और चन्दन मिला होता है। यह पाँच कन्यायें भारत के पाँच कर्म तत्वों ज्ञान, पराक्रम, विमर्ष, नियम और साधना पाँच जीवन के लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और ब्रह्म को दर्शाती है ।

स्नान करने के स्थान की भूमि पर एक गोलाकार बनाया जाता है। जिस में ग्रहों की दशा और दशद्वार पालों की दशा दिखाई होती है जो दुल्हन के जीवन को सुखमय बनाते है।

दिवगोण की रस्म कलश पूजा से आरम्भ होती है। इस के पश्चात अग्नि में आहुति ड़ाली जाती है। और मात्रिकाओं की पूजा होती है । सात मात्रिकाओं के लिये सात क्षीर के बर्तन (टाकू) सजाये जाते है हर बर्तन पर चावल के आटे की टुकड़ी अखरोट, टीका, नारीवन और मूँग का बना कुल्चा "मोंग वोर" रखा जाता है इस के साथ साथ कच्चे आटे की सात सात गोलियाँ और रोटी के छोटे टुकड़े रखे जाते है। इस सारी सामग्री की पूजा होती है और इस को "दिवत् गूल्य" कहते है।

"दिवत् गूल्य" का यह प्रसाद पहले मासी, बुआ, चाची और मामी को खिलाया जाता है इस के पश्चात रिश्ते

की औरतों और मुहल्ले की महिलाओं में बाँटा जाता है।

यूँ तो पूजा सात बर्तनों में रखे प्रसाद की होती है। यदि लेने वालों की भीड़ ज्यादा हो तो फिर सादा खीर मंगाई जाती है।

दिवत् गूल्य क्या है ?

"दिवत् गूल्य" माता शक्ति के सात रूपों जिन को मात्रिका कहते है के नाम सात खीर के बर्तन (टाकू) जिन के साथ टीका, नारीवन, रोटी के टुक्ड़े, अखरोट, अर्ग्य, फूल चड़ाया होता है मूँग की रोटी (मोंग् वोर) इन के साथ रखे होते है पहले गुरू जी कच्चे आटे की गोलियों फिर रोटी के टुक्ड़े और अन्त में क्षीर के बर्तनों अर्थात मात्रिकाओं की पूजा करते है। दुल्हा और दुल्हन की लम्बी आयु की कामना करके माता शक्ति से दोनों के लिए दीर्धआयु का वरदान मा.१गा जाता है। इस सारी सामग्री को "दिवत् गूल्य" कहते है।

दिवत ग्यूलि क्या है

देवगुण की समाप्ति के पश्चात, सांयकाल को घर की सभी स्त्रीयां , रिश्तेदार व पड़ोस की स्त्रीयां एक जलूस की शक्ल में देवगुण यज्ञ में रखी सामग्री को जल अथवा किसी फलदार पेड़ के पास ले जाकर पूजा अर्चना करती हैं और इसका प्रसाद सभी में बांट दिया जाता है। शेष सामग्री को जल में विसर्जित कर दिया जाता है।

स्त्रीयों का जलूस शाम को मात्रिकाओं का यह भोग दरया पर ले जाते है ओर साथ वाली सत्रयॉं सामवेद की ऋृचाओं का 'हेन्जे' की धुन पर गान करता हुआ चलता है। घर की बड़ी स्त्री के हाथ में यह सामग्री किसी बर्तन में ले जाई जाती है। पीछे पीछे स्त्रियों का समूह देवताओं की स्तुति करते हुए कदम–कदम आगे बढ़ता है। कहा जाता है कि जो औरत इस समारोह में भाग लेती है उसका अच्छा प्रभाव उसके परिवा. पर पड़ता है और यह स्वभाविक भी हैं। एक तो सामूहिक हो पाना ही व्यक्ति में आत्मबल पैदा करता है। सामूहिक उत्तरदायित्व की एक भावना का विकास होता है और सबसे बड़ी बात यह कि एक उत्त्सवधर्मिता जो शुभ और मंगल का सूमह में आवाहन करती हुई चलती है निश्चित

ही एक शुभ और मंगल का प्रभाव अपने आसपास डालती है।



'हेन्जे' कुछ इस प्रकार के होते हैं।

दिवतॅ ग्यूलि वैटथय ईश्वर नि कूने
जूने लॅर सॉन शोलॅ मारान

दिवतगूल्य को यज्ञशाला से उठाना प्रारंभ किया ईश्वर के नाम पर ; हमारा मकान चांदनी में चमक उठा है।

दिवत ग्यूलि ब्रोंठ ब्रोंठ शमा
पत पत ब्रह्मा वेद वख्नान

ज्योतिप्रकाश की तरह दिवतगूल्य (देवताओं के लिए भोग) हमारे आगे आगे है पीछे पीछे ब्रह्मा जी वेदपाठ कर रहे हैं।

दिवत ग्यूलि कौडमय बड़ि दरवाज़य

राज़य गणेश सत्य हयथ

देवभोग को बड़े दरवाजे से बाहर लाया है साथ साथ सिद्धिदाता गणेश भी चल रहे हैं।

यजमन बायि छुम नाबद हले

फलि फलि दीय मोज बॉगरॉविथ

यजमान बाय (घर की बड़ी बूढ़ी स्त्री) के जेबों में मिठास भरी है ; सबको थोड़ा थोड़ा देगी।

उसके उपरांत वितस्ता की पूजा की जाती है।

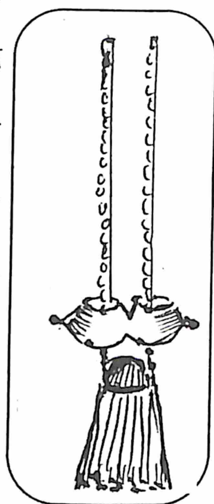
मोज विस्ताये बेवछि हैं लजुम

लाला दिम कोछि तय घर गछहा

मां वितस्ता मुझे बहुत भूख है। मेरी गोद में लाल जैसा बेटा दो जो मै खुशी खुशी घर जाऊं ।

कश्मीरी पंडितों का विवाह संस्कार

डेजहोर : डेजहोर सोने का बना एक आभूषण है जिसे लडकी को 'देवगुण' के समय पहनाया जाता है। प्राचीन काल से यह प्रथा ज्यों की त्यों चली आ रही है। इस आभूषण का तोल घर की आय पर निर्भर करता है। आम हिंदू समाज में जो महत्व 'मगंल सूत्र ' का है वही महत्व कश्मीरी पंडितों में 'डेजहोर' का है। लेकिन जहां 'मंगल सूत्र' गले में पहना जाता है। वहीं 'डेजहोर' कानों में सुराख करके पहनाया जाता है। इसकी लम्बाई छाती तक रखी जाती है। 'डेजहोर' कश्मीरी संस्कृति की विशिष्ट पहचान है। आप दूर से भी केवल 'डेजहोर' पहनी स्त्री को देखकर पहचान सकते हैं कि यह स्त्री कश्मीरी पंडित समाज की है।



'मंगल सूत्र' की तरह ही 'डेजहोर' पहना नही जाता बल्कि धारण किया जाता है। इसका अर्थ है कि मन्त्रोपचार के द्वारा इसे एक रक्षा यंत्र के रूप में

प्रतिष्ठित किया जाता है। इस यंत्र के तीन प्रमुख भाग है। दो सिरे नुकीले और बीच में चपटा । यह दो नुकीले सिरे शिव और शक्ति का प्रतीक हैं जबकि बीच वाला चपटा भाग यज्ञ शाला की वेदी अर्थात गृहस्थी में प्रवेश होने का प्रतीक है।

पुराने समय में जब यातायात की सुविधा न के बराबर थी, पैदल चलने का रिवाज था, रास्ते कठिन और मंजिले दूर हुआ करती थीं। लड़की के सुसराल में जाकर उसका हालचाल पूछना मुश्किल होता था, सर्दी और बर्फ के कारण रास्ते कटे होते थे, लड़की एक नये माहोल में गई होती थी, विवाह के उपरांत तीन वर्ष तक उसे घूंघट में रहना होता था : ऐसे में लड़की के माता पिता और तो कुछ नही कर पाते थे बस जगत अंबा का दामन थाम कर लड़की और उसके परिवार की रक्षा की प्रार्थना करते थे और इस शक्ति यंत्र के सहारे लड़की को घर से विदा करते थे।

डेजहोर की लम्बाई छातीयों तक क्यों रखी जाती है?

इसके बारे में कहा जाता है चूंकी यह यंत्र शिव और शक्ति का वरदान है और मां के स्तनों से बच्चा

दूध पीता है सो मां के दूध के साथ साथ शिव और शक्ति का वरदान भी बच्चे को प्राप्त होता रहे। उसे अच्छे संस्कार मिलते रहें ताकि आगे चल कर बच्चा सर्वगुणसंपन्न होकर समाज में यश प्राप्त करे। शायद यही कारण है कि कश्मीरी पंडितों के पास एक सुलझा हुआ दिमाग होता हैं। वे निरक्षर नही होते। अपने कार्य में दक्ष और चतुर होते हैं। कश्मीरी पंडितों में अपराध वृत्ति लगभग शून्य है। इनका नज़रिया तगं नही होता और वैर को अधिक समय तक नही पालते । यह हर किसी को प्यार करने वाले लोग हैं। समय की नज़ाकत को समझ लेते हैं और स्वयं को परिस्थिति के अनुरूप ढालने की क्षमता रखते हैं।

जैसा कि लारेंस ने अपनी पुस्तक (The Valley of Kashmir) में लिखा है ' कश्मीरी पंडित आज्ञाकारी, मिलनसार और होनहार लोग हैं। यह अपने कार्य में दक्ष और इमानदार होते हैं। यह सभी गुण शायद इस कौम को मां के दूध के साथ शिव और शक्ति के इस शक्ति यंत्र से प्राप्त होते हैं।

कश्मीरी पंडितों का आदर्श वाक्य है

यस्यां न विद्या तपो न दानं

ज्ञानम् न शीलं गुणे न धर्म

ते मृत्युलोके भव भार भूता

मनुष्य रूपेण मृगा चरन्ति

अर्थात जिनके पास विद्या नही, तप नही, दान की क्षमता नही, गुण नही, धर्म नही वे व्यक्ति पृथ्वी का भार हैं, उनके चेहरे मनुष्य के हैं लेकिन महत्व पशुओं से अधिक नही है।

एक आभूषण के रूप में 'डेजहोर' संकट के समय में आर्थिक सुरक्षा के रूप में तो है ही लेकिन इसे स्त्री को चिरयौवन देने वाला यंत्र भी माना जाता है। जॉन रिग ने अपनी किताब (Sex impulses) में स्त्री के चिर यौवन के लिए स्त्री के स्तनों का हल्के कम्पनो में रहने की बात लिखी है। कठंहार और छातीयों तक लटके 'डेजहोर' का संभवतः एक अर्थ यह भी सकता है।

पोश पूजा

कश्मीरी पंडित संस्कृति में पोश पूजा का अपना ही एक महत्व है। इसका शब्दिक अर्थ है फूलों से पूजा करना । लेकिन यह बहुत ही भावनाओं से भरा, मन के तारों को हिला देने वाला प्रसंग होता है। एक तरफ कन्या ऋण से मुक्त होने का संतोष, दूसरी तरफ बेटी की जुदाई और विदाई की ध्ड़ी , तीसरी तरफ ऐसे गीत गाए जा रहे होते हैं जो पत्थर को भी पिघला दें।

शंकर पार्वती विवाह में पोष पूज़ा के समय समस्त देवताओं ने आकाश से कुसुम वर्षा की थी उस प्रसंग को कृष्ण जू राज़दान ने बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

मोख्तकनि तारख छिर्स ताबदानस
छम भगवानस पोंशि पूज़ा

लग्न के समय होने वाली इस पोशपूजा में माता पिता बन्धू–बांधव, रिश्तेदार , मित्रगण सभी वर वधू पर फूलों की वर्षा करते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि देवगुण से लग्न तक वर वधू सभी शारीरिक व मानसिक दोषों से मुक्त होकर लक्ष्मी विष्णु रूप हो जाते हैं। इसी भावना के साथ वर वधू की विधिपूर्वक पूजा की जाती है। थोड़े बहुत

बदलाव के साथ अन्य समाजों में भी यही भावना मूल रूप से विद्यमान है। लेकिन एक अंतर आ गया है। जहां अन्य समाजों में इस अवसर पर कई प्रकार की विकृतियां आ गई हैं, कई लोग इस अवसर पर बहुत ही उद्‌दण्ड व्यवहार करने लगे हैं, वहां कश्मीरी पंडितो का इस अवसर पर मर्यादापूर्ण व्यवहार रहता है। पोश पूजा का कार्य लगभग पौने घंटे तक चलता रहता है। कश्मीरी विवाह में यह दृश्य बहुत ही रोमांचक होता है। आर्शीवादों में घुली ममता और आत्मीयता, नम आंखें, अजुंलि में फूल, गुरू जी द्वारा किया जा रहा मन्त्रोच्चार कई बार मन के सारे बांध तोड़ जाता है।

(उमा यथा महेशस्य तदात्वं भव भर्तरि)—उमा महेश जैसे अभिन्न हैं तुम भी वैसी ही बनो रामस्य च तथा सीता , विनीता कश्यपस्यच, जिस प्रकार राम और सीता, कश्यप और विर्नीता एक दूजे के प्यार में बंधे हैं भगवान करे तुम्हारी जोड़ी भी उसी प्रकार की हो।

तुम दोनो का जीवन में वैसा ही स्नेह प्रीत और आत्मीयता रहे जैसी चन्द्र और रोहिणी में है जैसी कामदेन्द्रा और रति में है।

यावदिन्द्र दयो देवा यावश्च्चंद्र दिवा करौ

यावत राम कथा लोके भूयातावत स्थितिस्तवः

गृहस्थ–आश्रम के सम्बन्ध में सबसे ऊँचे विचार वेदों के विवाहसंबंधी सूक्तों में तथा सामनस्य–सृक्तों में मिलते हैं। यहाँ केवल दो–चार उद्धरण देना पर्याप्त होगा —

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं

मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः (ऋक् ० १० । ८५ । ३६)

समंजन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ। (ऋक्० १० ।८५ ।४७)

ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि । (ऋक्० १० ।८५ ।२४)

अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि (ऋक्० १० ।८५ ।२७)

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती ।

सुगेभिर्दुर्गमतीताम् .... (ऋक्० १० ।८५ ।३२)

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वा भव। (ऋक्० १० ।८५ ।४६)

इहैव स्त। मा वि यौष्टं .... (ऋक्० १० ।८५ ।४२)

स्योनास्यै सवैस्यै विशे (अथर्व ० १४ ।२ ।२७)

अर्थात् हे वधु ! हम दोनों की सौभाग्य–समृद्धि के लिए मैं तुम्हारा पाणि–ग्रहण कर रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि मैंने तुम्हें देवताओं से प्रसादरूप में गृहस्थ–धर्म के

पालन के लिए पाया हैं।

सारी देवी शक्तियाँ हमारे हृदयों की परस्पर अनुकूल, कर्त्तव्यों के पालन में सावधान और जलों के समान शान्त और भेद–भाव–रहित करें ।

विवाह का लक्ष्य यही है कि पति–पत्नी दोनों गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके संयम और सच्चरित्रता का पवित्र जीवन बिताते हुए अपना पूरा विकास कर सकें।

अयि वधु ! तुम पति–गृह में पहुँचकर गृहस्थ के कर्त्तव्य–पालन में सदा जाग–रूक और सावधान रहना ।

वे दुर्भावनाएँ, जो प्रायः पति–पत्नी के जीवन में भेद और विराग पैदा कर देती हैं, तुम दोनों के बीच में कभी न आयें । तुम दोनों सदाचारपूर्वक इस कठिन गृहस्थ ध र्म का पालन करो ।

हे वधु! तुम पतिगृह में सास–ससुर के लिए सम्राज्ञी के रूप में प्रेम और सम्मान का पात्र बनकर रहना ।

तुम दोनों जीवन में एकमत होकर रहो, तुम्हारा वियोग कभी न हो।

हे वधु ! तुम्हारा गृहस्थ–जीवन सारी जनता के हलए

सुख देनेवाला हो।

वैवाहिक जीवन के पवित्र और महान् लक्ष्य की ओर स्पष्ट संकेत करने–वाले इन उदात विचारोंपर टीका–टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है। भारतीय इतिहास के मध्यकाल के उन लज़्जाजनक विचारों से ये कितने भिन्न हैं, जिनमें स्त्री को 'उपभोग की सामग्री', 'नरक का द्धार' (नारी नरकस्य द्धारम्), 'ताड़ंन की अधिकारी' और 'आदमी की दासी' तक कहा गया है।

इसी प्रकार वेदों के सांमनस्थ–सूक्तों में गृहस्थ–जीवन के सम्बन्ध में जो सुन्दर भाव प्रकट किये गये है, वे भी वैदिक संस्कृति की एक महान् निधि हैं।

उदारणार्च,

सहृदयं सांमनस्यमविंद्धेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाध्न्या।।
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्।।
मा भ्राता भ्रातरं द्धिक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यंचः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।
(अथर्व० ३।३०।१–३)

अर्थात्, हे गृहस्थो ! तुम्हारे पारिवारिक जीवन में परस्पर एकता, सौहार्द और सद्भावना होनी चाहिए । द्वेष की गन्ध भी न हों । तुम एक–दूसरे से उसी तरह प्रेम करों, जैसे गौ अपने तुरन्त जन्मे हुए बछड़े को प्यार करती है।

पुत्र अपने माता–पिता का आज्ञाकारी और उनके साथ एकमन होकर रहे।

पत्नी अपने पति के प्रति मधुर और स्नेह–युक्त वाणी का ही व्यवहार करे।

भाई–भाई के साथ और बहिन–बहिन के साथ द्वेष न करे !

तुम्हें चाहिए कि एकमन होकर समान आदर्शों का अनुसरण करते हुए परस्पर स्नेह और प्रेम को बढ़ानेवाली वाणी का ही व्यवहार करो !



द्वार पूजा

द्वार पूजा लग्न के महत्त्वपूर्ण कार्यों में से एक है। दूल्हा जब ससुराल के आंगन में पहुंचता है तो सर्वप्रथम 'व्यूग' पर उसकी आरती उतारी जाती है। उसके बाद घर की दहलीज पर पहुंचते ही वेद मंत्रो से दूल्हे का स्वागत होता है। लड़की का पिता कहता है ......

मैं यहां पधारने पर आपका स्वागत करता हूं इसके उपरांत शास्त्रविधि के अनुसार द्वार पूजा की जाती है। जोकि वास्तव में द्वार देवता की पूजा है।

अश्विनोंरिति द्वारस्थ जीवाधदानम्

"गायत्र्ये नमः उँ र्भू भवः स्वः द्वार देवतानाम्" इसके बाद लड़की का पिता लड़के से पूछता है ।

'आप यहां किसलिए आए हैं।'

दूल्हा आदर पूर्वक कहता है

'मैं आपकी कन्या से विवाह करना चाहता हूं' इसके बाद लडकी का पिता प्रार्थना स्वीकार करते हुए दुल्हे से कुछ प्रश्न करता है। । जो अध्यात्मि, सामाजिक धार्मिक तथा आर्थिक बातों से जुडे होते है। इस से सुसुर होने वाले दामाद का Intelligence test जैसा लेता है। प्रश्नों

का ठीक उत्तर मिलने पर ही जज़मान दुल्हे को घर में प्रवेश करने की अनुमति देता है।

सानन्दं सदनं सतास्तु

सद्यिय: कांता प्रियालापिनी

तुम लोगो का घर आनन्द से भर जाए तुम्हारा पुत्र बुद्धिमान निकले और घर मे आई दुल्हन बुद्विमान निकले।

इच्छा पूंति धनं स्वयोषिति

स्वाज्ञा परा: सेवका

इच्छा को पूर्ण करने वाला धन हो । स्त्री पुरूष में आपसी प्रेम हो । सेवक आज्ञाकारी निकले।

अतिथ्यां शिव पूजनं

प्रतिदिनं मिष्टान्न गृहे

अतिथि का घर में स्वागत हो। भगवान शंकर की पूजा प्रतिदिन घर में हो घर में प्रतिदिन स्वादिष्ट भोजन बने।

साधो:संगमपुासते

च सततं धन्यो गृहस्थ श्रम।।

तुम्हें महात्मांओं अच्छे पुरुषों का संग मिल्ता रहे। यदि यह सभी बातें गृहस्थ़ी में हों तो गृहस्थ धर्म धन्य है

सप्तपदी

लगन के समय अग्नि के समक्ष सात रूपए रखें जाते हैं। दुलहन को एक एक मंत्र पढ़ने के साथ साथ एक एक रूपए पर पांव रख कर चलना होता है। इस कार्य को सप्तपदी कहते हैं।

यह सात कदम सात मंत्रों पर आधारित हैं।

प्रथम श्लोक दुल्हन को सुसराल जाने का निवेदन करता है। यहां दुल्हन को 'एक मिशे' नाम दिया गया है। बेहू को कहा जाता है कि तुम्हारे आने से सुसराल खुशहाल हो ।

दूसरे श्लोक में लड़के को आर्शीवाद दिया जाता है कि ससुराल में तुम्हारा प्रवेश सरस्वती के रूप में हो ।

चौथे श्लोक में दुल्हन से अनुरोध है कि तुम सुसराल की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाली बनो । जिस द्वार में तुम प्रवेश कर रही हो तुम्हारे आने से उस घर की मान प्रतिष्ठा में चार चांद लगें । तुम्हारा यश चारों दिशाओं में फैले।

पांचवे पद में कहा गया है कि तुम्हारे आने से ससुराल की श्री और आनंद में वृद्धि हो छटे पद में वंश वृद्धि की बात कही गई है सांतवे पद् में कहा गया है कि तुम्हे सदा पति का प्यार मिलता रहे।

इसके पश्चात गुरू जी दुल्हन को सुखी गृहस्थ जीवन का आर्शीवाद देते है।

आंगन में व्यूग डालना

शुभ कार्यों में, आंगन में व्यूग डाला जाता है। यह एक प्रकार की यन्त्राकृति है जिसे पृथ्वी पर बनाया जाता है। माना जाता है कि विघ्नरहित कार्य की संपन्नता के लिए 'व्यूग' अत्युत्तम साधन है। इसे सभी देवी देवताओं का आर्शीवाद प्राप्त होता है। व्यूग को सूर्यचक्र भी कहा जाता है। इसका प्रयोग प्रायः यज्ञोपवीत के दिन और विवाह के अवसर पर दूल्हे का स्वागत करने के लिए किया जाता है। वर के आगमन पर, आंगन से बाहर पुष्पमालाओं से वर का स्वागत किया जाता है और आंगन में पहुंचने पर व्यूग पर ले जाकर उसकी आरती उतारी जाती है।

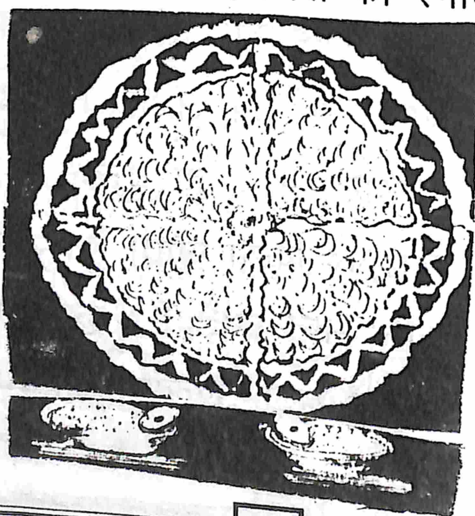
हिन्दुओं में शादी व्याह कोई लिखित समझौता नही होता। इसलिए आंगन में सब लोगो, रिश्तेदारों और पड़ोसियों की उपस्थिति में दुल्हा दुल्हन का स्वागत व्यूग अर्थात सूर्यचक्र पर किया जाता है। अग्नि और सूर्य सबसे बड़े साक्षी माने जाते हैं। इस क्रम में वर वधू को एक दूसरे का झूठा खिलाया जाता है। ऐसा

विचार है कि इससे पति पत्नी में प्यार बढ़ता है। लग्न के पश्चात भी पुनः इसी मिठाई से दोनो का फिर स्वागत किया जाता है।

शास्त्रों में कहा गया हैं कि लग्न के साथ वर वधु शिव पार्वती का स्वरुप होते हैं इसलिए उनका स्वागत भी उसी प्रकार होना चाहिए जिस प्रकार शंकर का स्वागत सुसराल में हुआ था। ऐसा कहा जाता है जब दुल्हा दुल्हन की जोड़ी आंगन में पहुंचती है तो आंगन एक तीर्थ में बदल जाता है।

व्यूग डालने के प्रमाण हमेंमोहनजोदारो और हरप्पा के अवशेषों में भी मिलते हैं।

आज भी भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में शुभ अवसरों पर व्यूग डाला जाता है। जिस को रंगोली कहते है।



कश्मीरी पंडितों के गोत्र

अलबरोनी जो मुहमम्द गज़नवी के साथ १०२१ में भारत आया, कश्मीर पहुँच कर यहॉ की संस्कृति की छवि को देखकर दंग रह गया, लिखता है।

'कश्मीर विज्ञान और हिन्दू सभ्यता का घर है यहाँ के लोगों ने अपने अध्यात्मिक और धार्मिक जीवन को स्वच्छ रखा है। ये अधिकतर शिव भक्त हैं।

एक अंग्रेज लेखक J.K.Farquhar अपनी पुस्तक "The crown of Hinduism " में लिखते हैं "Each member of the caste is bound to preserve his purity to the utmost, purity is preserved by faithfull performance by domestic secraments, the shradha ecremonies and vedic sacrifices and the daily Devotions prescribed :- He feels pollution dangerous not to himself but for society at large"

कश्मीरी पंडित अपने को ऋषियों की सन्तान समझते हैं । हर एक पंड़ित को अपने पूर्वजों का नाम याद है। पूर्वजों के नाम पर तर्पण देना वे अपना अनिवार्य कर्तव्य समझतें हैं। इन पूर्वजों को कश्मीरी पंड़ित गोत्र कहते हैं। गोत्र का अर्थ है आदि ऋषि जिस से इस वंश की

उत्पत्ति हुई है।

इस से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कश्मीरी पंडितों ने अपने Genetic Tree या अपनी वंशावली को जो उसे अपने पूर्वजों से विरासत में मिली है हर कीमत पर ज़िन्दा रखा है। यह हर्षा देने वाली बात है कि हर कश्मीरी को अपने पूर्वजों का नाम जबानी याद है। और वह अपने पूर्वजों को सुबह उठकर तर्पण देता है। हर कुल का पूर्वज एक महान ऋषि हुआ है जिन्होंने वेद रचे है। स्मृतियाँ तैयार की है और ईश्वर का साक्षात्कार प्राप्त किया है इन ही ऋषियों ने ज्योतिष विद्या और संस्कृत व्याकरण की नींव तैयार की। गणित और तिब (वैदंगी) में अपनी बुद्धि का कमाल दिखाया है। इन पूर्वजों को कश्मीरी पंड़ित गोत्र कहते हैं,। गोत्र का अर्थ है कि हम इन्ही सन्तों और ऋषियों की संतान है। कुछ गोत्रों के नाम नीचे दिये हुए है।

१. भारद्वाज २. याज्ञ वल्क ३. कपिल मुनि
४. र्वाषज्ञा ५. वासुख शण्डला
६. कौशिकी ७. भगिव ८. वार्षायण

९. ऋषि कन्या गर्ग   १०. दतात्रय कौल

११. पट स्वामिना कौशिका   १२. अगस्त्य

१३. स्वामी गौतम   १४. अत्री भार्गव

१५. विश्व भारद्वाज   १६. भाव देवालया

१७. देव शाला सची   १८ कपिस्थला

१९ शिण्डल्य   २० स्वामिन मुद्ग्ल

२१. स्वामिन वास गारगी   २२. रूप मन्यु

२३. राज़लोघाकि   २४. नन्द गोतम आदि

पलायन और जातियाँ

कश्मीरी पंडित १९९० से भारत और विश्व के कोने कोने में बिखर गये। कुछ वर्षो के पश्चात कश्मीरी पंड़ित की पहचान और उसकी जाति का नाम ही मिट जायेगा। क्योंकि यह अनजानी सभ्यता और तहज़ीबी दायरे में बह जायेगी यह इस की मजबूरी है। अतः इस के घर और घर से बाहिर उसको कश्मीरी होने की पह्चान को जीवित रखा जा सकें । इसलिए कश्मीरी पंड़ितों की जातियों का ज्ञान होना आधुनिक परिस्थितियों में आवश्यक बन गया है। कुछ जातियाँ यह है।

१. कौल   २. राज़दान ३. तिक्कू

४. रैना　　५. पँड़ित

६. भटट　　७.फोतेदार　　८.हँडू

६.ज़ाडू　　१०. खरू　　११. सिबू

१२. रवैबरी　　१३. पेशन　　१४. कल्लू

१६. मिस्री　　१७. कन्दहारी　　१८. तलाशी

१६. तुफंची　　२०. त्रक्रू　　२१. तुर्की

२२. ठुसू　　२३. वांगनू　　२४. कोठदार

२५. ऐमा　　२६. यच्छू

२७. सफाया　　२८. बाम्ज़ई　　२६. द्राबी

३० हाक　　३१. ऋषि　　३२. साहिब

३३. मोज़ा　　३४. रवर　　३५. शंगलू

३६. सुल्तान　　३७. सलमान　　३८. तोता

३६. ओगरा　　४०. शेर　　४१. पटू

४२. कोकरू　　४३. खशू　　४४. सिद्ध

४५. लाहोरी　　४६. ब्रारू　　४७. गंजू

४८. कुचरू　　४६. माम　　५०. मटू

५१. वैष्णवी　　५२. टेगं　　५३. वोफा

५४. वाँचू　　५५. वाज़ा　　५६. वातल

५७. खेड़ा　　५८. खार　　५६. मिस्कीन

६०. कार ६१. घघर ६२. पड़रू

६३. पारिमू ६४. काक ६५. वारिकू

६६. ज़ालपुरी ६७. म़तू ६८. सप्रू

६९. सज़ोवुल ७०. कल्लू ७१. भान

७२. हकीम ७३. बड़गामी ७४. करवानी

७५. वोखलू ७६. दास ७७. मीरखोर

७८. बंगरू ७९. रंगरू ८०. बकाया

८१. कदल बुजी ८२. किचलू ८३. मला

८४. पीर ८५. पटू ८६. जुतिषी

८७. पठवारी ८८. कोतरू ८९. गडू

९०. कल्ला ९१. गड़वानी ९२. बा़ली

९३. चिकन ९४. चलू ९५. लाबरू

९६. बूनी ९७. छ़टू ९८. खज़ांची

९९. मराज़ी १००. मुशरान १०१. ज़तू

१०२. मतू १०३. खचरू १०४. ज़रू

१०५. बख़्शी १०६. हखू १०७. वली

१०८. दूदा १०९. हाँगलू ११०. लंगि

१११. कासिद ११२. करनैल ११३. भण्डारी

११४. चौधरी ११५. किसू ११६. सराफ

११७. थपलू　　११८. ऋषि　　११९. सप्रू

१२०. खान　　१२१. वंगू　　१२२. क्यमू

१२३. सस　　१२४. काव　　१२५. काव

१२६. काठजू　　१२७. बागाती　　१२८. परवरू

१२९. मलिक　　१३०. मोंगॅ



कश्मीरी पंडितों के जातीय व्रत और त्यौहार

वैसे तो कश्मीरी पंडित, भारतीय सांस्कतिक एकता के सभी प्रमुख त्यौहार, उतसाह और उल्लास के साथ मनाते है। लेकिन कुछ त्यौहार और व्रत उनकी जातीय और एतहासिक पहचान के साथ जुड़े हुए हैं।

भारत के किसी भी प्रांत में प्रत्येक मास की अष्टमी का व्रत नही मनाया जाता । लेकिन कश्मीरी पंड़ितों में इससे महत्वर्पूण और कोई व्रत नही। कहते हैं अष्टमी के दिन महाराज्ञिना क्षीर भवानी प्रकट हुई थी। कश्मीरी पंड़ितों के लिए जगदंबा क्षीर भवानी ही सिद्धिदात्री, शरणागतवत्सल, इहलोक और परलोक को सुधारने वाली आदिशक्ति हैं। ज्येष्टअष्टमी को क्षीर भवानी माता का जन्मोत्सव विशेष रुप से मनाया जाता हैं। इस दिन हज़ारों की संख्या में श्रद्धालू क्षीर भवानी तुलमुला में एकत्रित होते हैं।

कहा जाता है जगत जननी **महाराज्ञिना** का पूर्व निवास लंका में था। हनुमान जी के आग्रह पर माता ने

कश्मीर स्थान को प्रकाशित किया। (कौशुर समाचार **vol-२ मई २००२**) कश्मीर में माता का पहला निवास स्थान 'राइथन' बड़गाम में था। कहावत् है कि रात भगवती, कश्मीर के महान योगी कृष्ण कार के स्वपन में आई और उनसे कहा कि तुलमुला में मेरे स्थान का निर्माण करो। कृष्ण कार ते जब 'तुलामुला' नाम के किसी स्थान के बारे में अपनी अनभिज्ञता प्रकट की तो माता ने आदेश दिया कि प्रात; उठ कर मेरी पिंडियों को लेकर चलो। एक सर्प तुम्हारा मार्गदर्शन करेगा। स्वामी जी माता के आदेशानुसार ही किया और तुलमुला के चश्मे के पास पहुंच गए। वहीं पर माता के स्थान का निर्माण किया।

कश्मीर में जहां–जहां माता के पावन स्थल हैं वहां–वहां ज्येष्टमी को मेला लगता है। जैसे कुलगाम (खनबरन्यन) में त्रिपुरसुन्दरी, मंजगांव में **महाराज्ञिना** स्थापन, पहलगांव (लोगरीपुरा) व (टिकर) कुपवारा में "देवीबल, बारामुला में मंगला तीर्थ व बीजबिहाड़ा में जयाभगवति का मेला लगता है। बुद्धधर्म को मानने वाले भी अष्टमी का व्रत मनाते है। उन की धारणा है कि

भगवान बुध ने अष्टमी के दिन ही "अष्टप्रधान" को दीक्षा दी थी।

"आषाढ़ नवमी"

कहा जाता है कि आषाढ़ नवमी के दिन भगवती ने शारिका का रूप धारण करके जलोद्भव नामक राक्षस का वध किया था। मनुष्यों और देवताओं को इस राक्षस के भयंकर अत्याचारों से मुक्ति मिली थी। तभी से इसी उपलक्ष्य में आषाढ़ नवमी का दिन मनाया जाता है। इस दिन श्रद्धालू जन "हारीर्पवत" में पीले चावल और कलेजी के टंकड़ो का नैवेद्य चढ़ाते हैं जिसे "तहर च़रवन" कहा जाता है।

कश्मीर के पावन तीर्थ

कश्मीर प्राचीन काल से ही तपोभूमि के नाम से विख्यात है। यहां के आचार्यो, तपस्वीयों, महात्माओं और सिद्वपुरूषों ने अध्यात्म और ज्ञान के क्षेत्र में प्रमुख भूमिका निभाई है। अद्वैत और शिवसिद्वान्त इसी भूभाग में प्रकट हुए। काश्मीर के ऋषियो और महात्माओं ने जिन–जिन स्थानों पर तपस्या की व सत्य का साक्षात्कार किया वे स्थान कालांतर में पावन तीर्थ बन गए।

कश्मीर के प्रमुख तीर्थों में एक है शारदा तीर्थ। भगवती शारदा विद्या व कला की देवी हैं। शारदा तीर्थ प्रमुख शक्तिस्थलों में माना जाता है। कृष्ण गंगा के तट पर बना शारदा मंदिर शंकरार्चाय के मंदिर की तरह पत्थरां का बना है। कल्हन और अन्य विद्वानों ने इस तीर्थ का उल्लेख अपनी पुस्तकों में किया है। काश्मीर के महान शैवार्चाय स्वामी विधाधर का निवास भी यहीं था। कहते है कुछ कारणों से भगवती शारदा ने स्वयं को मंदिर के प्रांगण में बने कुएं में छिपा लिया था और कुएं को एक भारी पत्थर से ढंक दिया गया। जो यात्री यहां र्दशन के लिए आते हैं वह पहले कुएं पर रखी शिला की पूजा करते हैं। १६४७ से यह मंदिर पाकिस्तान द्वारा कब्जाए गए कश्मीर में रह गया है।

शारिका तीर्थ

कहा जाता है कि जलोद्भव नामक राक्षस के अत्याचारों से तंग आए देवताओं ने महर्षि कश्यप के आदेशानुसार माता भगवति की आराधना की। देवताओं पर प्रसन्न होकर माता ने शारिका का रूप धारण कर इस राक्षस का वध किया। कहते

है जलोद्भव का शरीर एक पहाड़ी में बदल गया। इसी पहाड़ी पर कश्मीर का दूसरा शक्तिपीठ हारीपर्वत के नाम से विख्यात हुआ।

कश्मीर में जगतजननी माता के अनेक पावन स्थान हैं जिनमें हंदवारा में भद्रकाली, कुपवाड़ा में टिकर, बारामुला में देवीबल, बीजबिहाड़ा में जया भगवती, हब्बाकदल प्रथ्वीनाथ तिकु के घर में त्रिपुरादेवी, मंजगांव में क्षीरभवानी, अकिनगांव में शिवाभगवती बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त कुलगाम, लारिकी पोरा मटन और पहलगांव में भी शक्ति के अनेक स्थान हैं।

शिवतीर्थ

कश्मीर के प्राचीनतम शिवतीर्थो में स्वामी अमरनाथ का पावन तीर्थ है। समुद्र तल के तेरह हज़ार फीट की उचांई पर शेषनाग की मनोहर झील के पास, श्रावण पूर्णमासी के दिन हिम लिंग के र्दशन के लिए भारत से ही नहीं विदेशों से भी अनेक श्रद्धालू भक्त यहां पहुंचते हैं।

थजीवारा

बीज बिहाड़ा से पहलगांव की तरफ जाने वाले

मार्ग पर यह तीर्थ है। प्राचीन समय में छड़ी मुबारक की यात्रा श्रीनगर से चलकर थजीवारा में समाप्त होती थी यहां पर भी अमरनाथ की भांति अमर गंगा, अमरबबूती, प्राकृतिक अमरकुंड बना हुआ है। जब अमरनाथ तीर्थ का जनता को पता चला तो उन दिनों छड़ी मुबारक थजीवाड़ा के रास्ते से ही जाती थी। अनंतनाग, ऐशमुकाम, मार्तण्ड और गणेश बल के पड़ाव इस यात्रा में नही आते थे।

भैरवतीर्थ

कश्मीर में शिवभक्त भगवान शंकर की आराधना भैरव के रूप में भी करते हैं। शिव को भैरव नाथ भी कहते है। शास्त्रों में उल्लेख है कि शिव के साथ भैरवों के का समूह भी चलता है। इनमें प्रमुख हैं एकादश रूद्र। इन भैरवों के कंई अस्थापन हैं। जैसे छताबल में बेताल (वाईताल) भैरव, अच्छन पुलवामा में भैरवनाथ अखाड़ा बिल्डिंग श्रीनगर में भैरव स्थान है। अखाड़ा बिल्डिंग वह स्थान है जहां से छडी मुबारक अमरनाथ के लिए निकलती है।

कश्मीर में निम्नलिखिति भैरव स्थान विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। तहसील पुलवामाकेगॉव अच्छन का भैरव स्थान स्वामी जगनाथ के नाम से जाना जाता है। सीर (सोपुर) में नंदकीश्वर अस्थापन, डाडसरा (त्राल) में नवदल शिवमंदिर, जैनापुरा (बीजबिहाड़ा) में नीलनाग, शोपियॉ में कपालमोचन, पहलगॉव में मामलिश्वर, श्रीनगर में शंकरार्चाय का मंदिर, रैणावारी का भैरवमंदिर, सालिया में पापहरण नाग और बिजबिहाड़ा का विजसेश्वर तीर्थ आदि कश्मीर के प्रसिद्ध भैरव स्थान है।

कश्मीर के प्रसिद्ध नाग

प्राचीनकाल से कश्मीर नागसभ्यता का प्रमुख केंद्र है। कश्मीरी पंड़ितों के संस्कति मुख्य रूप से नागसंस्कति की देन हैं। नागसंस्कति का प्रभाव इनके व्रत, तीज त्यौहारों पर भी समान रूप से देखने को मिलता है। यहॉ के पवित्र चश्मों को नाग कहा जाता है। इन चश्मों के नाम प्राचीनकाल से नागसभ्यता के महत्वपूर्ण ०यक्तियों के नाम से ही आज तक जाने जाते हैं। जैसे अंतनाग, शेषनाग, कारकूठ नाग, विचारनाग, गौतमनाग, कुठयेर नाग (अच्छाबल के पासं) पापहरण नाग इत्यादि इन

स्थानों पर हमारे पूर्वजों ने तपस्या की, सत्य का साक्षात्कार किया और ज्ञान प्राप्त किया। इन स्थानों पर यात्राओं और मेलों का विधान हमारी संस्कति का अभिन्न अंग है। क्षीरभवानी के चमत्कारी नाग की यात्रा से आज भी श्रद्धालू भक्तों की मनोकामनाएं पूर्ण होती है।

आषाढ़ चतुर्दशी

कश्मीरी पंडितों की मान्यता है कि इस दिन उमा भगवती ज्वाला के रूप में प्रकट हुई थीं। ज्वाला तीर्थ "ख्रिवशर" ग्राम की पहाड़ी पर स्थित है। यह बहुत ही रमणीक स्थान है। कहते है यहां अगर ५० दिन तक एकाग्रचित से तपस्या की जाय तो मनुष्य को योग सिद्धि प्राप्त होती है। मेरे एक प्रेमी और मित्र श्री तेज रावल जो यहां प्रबन्धक कमेटी के प्रभावी सदस्य है ने मुझे बहुत ही आश्रर्चय जनक द्रष्टांत सुनाए। आषाढ़ चतुर्दशी को यहां भक्तजन देवी मां को बली चढ़ाते हैं और कीतन, भजन, श्रवन व जागरण करके अपना जीवन सफल बनाते हैं।

खटचरि मावस (खिचड़ी अमावस्या)

माना जाता है सदियों पूर्व जब आंय जाति के लोग

ग्रीष्मकाल, घाटी में व्यतीत करने के बाद शीतकाल मैदानों में चले आते थे तब यक्ष नाम के आदिवासी, पीछे छूट गए आर्यों और उनकी सम्पति को लूटने के लिए दल बनाकर निकल आते थे। एक बार एक व्रद्ध आर्य दम्पति पीछे छूट गए जिन्हें लूटने की नीयत से यक्षों का एक दल चला आया। संयोग से उस दिन दम्पति ने अपने भोजन के लिए खिचड़ी बनाई हुई थी। यक्ष दल के नेता ने खिचड़ी चखी तो उसका स्वाद उसे भा गया। खिचड़ी के कारण यक्षों और आर्यों में मित्रता हो गई। तब से शीतलकाल में अमावस्या के दिन यक्षों के निमित खिचड़ी बनाने का नियम बन गया। जिसे आज तक खिचड़ी अमावस्या के रूप में मनाया जाता है। यह त्यौहार कश्मीरी पंड़ितों की संस्कति और संस्कारों के सम्पूर्ण इतिहास से जुड़ा हुआ है। आज जबकि न भूमि रही न वे यक्ष रहे, फिर भी कश्मीरी पंडित हज़ारों वर्ष पूर्व की उस मित्रता का सम्मांन इस त्यौहार के रूप में करते चले आ रहे हैं।

पन्न पूजा क्या है ?

पन्न पूजा कश्मीरी पंडितों का महत्वपूर्ण त्यौहार है। यह पूजा भाद्र के महीनें में पूरी आस्था और श्रद्धा से की जाती है। पन्न कश्मीरी में धागे को कहते है। यह धागा नये कपास से कात कर कुँवारी लड़की यां दादी के कान में पहनाती हैं। इसके पश्चात 'रोठ नैवेघ आरम्भ होता है।

पन्न का सामाजिक पहलू

यह त्यौहार भारत के कृषि जीवन का दर्पण है। भारत हज़ारों वर्ष से एक कृषि प्रधान देश है। इस देश में कृषि के साथ कई त्यौहार जुड़े है। कशमीर में पन्न नैवेद्य सब से बड़ा और' पवित्र त्यौहार है जो कृषि के साथ जुड़ा हुआ है।

पूजा

इस त्यौहार में 'रोठ' बनते है जिनकी पूजा विधि पूर्वक होती है। इस पूजा में जो सामग्री लगती है उसमें फूल, (चावल) , रोठ , जौ , धूप , दीप, नारीवन, और सिन्दूर का प्रयोग होता है।

आध्यात्मिक पहलू

यह त्यौहार महागणेश का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये मनाया जाता है। शास्त्रों में इस त्यौहार का वर्णन इस प्रकार है जो मनुष्य महागणेश सिद्धिदाता का भक्त हो और इस पन्न के त्यौहार पर श्रद्धा पूर्वक नैवेद्य तैयार करता हे। वह यदि भाग्यवश किसी मुश्किल में फँस जाता है तो विध्नहर्त्ता महागणेश की कृपा से बच के निकल आता है। उसको हर कार्य में सिद्धि मिलती है। बन्द पड़े काम आसानी से हल हो जाते है। घर में बाल बच्चों की रक्षा होती है। यदि ग्रह चक्र के अनुसार किसी को कालारिष्ट का योग बनता हो उसको श्रद्धा पूर्वक और विधि पूर्वक 'पन्न' पूजा करनी चाहिए। मुश्किलात ऐसे गायब होती हैं जैसे सूरज के निकलते ही ओस उड़ जाती है। योग सिद्धि प्राप्त करने के लिए, गृह शांति के लिए, संतान सुख प्राप्त करने के लिए, आर्थिक दशा को ठीक करने के लिए, पापों और शापों का नाश करने के लिए हर मनुष्य को साल में एक बार पन्न पूजा अवश्य करनी चाहिए ।

पन्न का आध्यात्मिक महत्व

पन्न देने को कश्मीरी में 'बीब गर्भ माजि हंज़ चोट' कहते है। बीब गर्भ – पृथ्वी माता को कहते है। यहं शाक्त मत को दर्शता है। अर्थ यह कि यह सारा जगत इसी माता के गर्भ से उत्पन्न होता है और इसी में वापिस समा जाता है। गर्भ वास्तव में शिव और शक्ति के आध्यात्मिक स्वरूप का नाम है। पन्न देना राजयोग से सम्बन्धित निशानी है। राजयोग के पड़ाव में ' यम' और ' नियम' यम सच्चाई , सन्तोष, दान देने की शक्ति को दर्शाता है और किसी का एहसान स्वीकार न करना सिखाता है।

यम की पालना किसी के आगे हाथ फैलाने से रोकती है

'पन्न' की कथा से ज़ाहिर है कि एक माँ और बेटी ने राजा के महल में जाकर धोडों की लीद से जौ और मक्की के दाने इक्ट्ठा करके पाँच पाव आटा तैयार किया उस आटे से उन्होनें पन्न पूजा की जिससे उनकी आत्म शुद्धि हुई और उनके कष्टों का निवारण हुआ। यम नियमों के पालन का इस त्यौहार में बहुत महत्व है

पन्न देने से कौन सी सच्चाई प्रकट होती है

पन्न का त्यौहार मनाने से शक्ति का अनुग्रह सिद्ध होता है। किस प्रकार लड़की पिता के लिये सच्ची श्रद्धा और भक्ति से रोठ नैवेद्य टोकरी के नीचे रखती है। और किस प्रकार वह रोठ सोने के टुक्ड़ों में तब्दील होते है। यह एक सच्चाई पर आधारित तजरुबा है कि यदि आज भी कोई मनुष्य मुश्किल में फंसा हो और वह रोठ का नैवेद्य ग्रहण करता है तो वह एकदम उस मुश्किल से निकल आता है। मगर उसके लिए आवश्यक बात यह है कि पन्न पूजा पूरी श्रद्धा और विश्वास से अंजाम दी जाये। यदि श्रद्धा के बदले केवल रस्म पालना हुई तो पत्र देने का कोई फायदा नही।

पन्न पूजा तान्त्रिक अमल है या केवल पूजा है

तान्त्रिक पूजा कश्मीरी पंड़ितों की साधना का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है। इस पूजा से शीघ्र ईश्वर प्राप्ति के द्वार खुलते है। शास्त्रों का कथन है कि यदि पन्न वाली जगह पर रखी गई घड़वी को भस्म का टीका लगाया जाये और साधक आसन धारण करके ऊँ का जप कुछ दिनों तक करता रहे उस पर शिव शक्ति और

सिद्धि दाता महागणेश की अनुपम कृपा होती है। जिस से वह स्वयं अनुमान में ला सकता है। मनुष्य को आनन्द का आभास होने लगता हैं ऐसी मधुर स्थिति पैदा होती है जिस से मनुष्य फिर बाहिर आने की कोशिश नही करता । मगर इन सब बातों के होने के लिये गुरू धारण करने की आवश्यकता है। अन्यथा यदि कहीं गल्ती हो तो नुक्सान होने का अन्देशा रहता है।

नाग मत का प्रभाव

पन्न पूजा के साथ नाग मत का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है पन्न देने से पहले लड़की जो सूत तैयार करके दादी के कान में पहनाती है उसको 'अनथ' कहते है जो कि नागराज शेष नाग का प्रतीक है। इस अनथ के बिना पन्न पूजा करना सम्भव नहीं। यह अनथ कश्मीरी पंड़ित सभ्यता पर नाग मत को दर्शाता है। एक और पक्ष इस का यह है कि घर की मालिकन गणेश जी से प्रतिज्ञा करती है। कि वह हर वर्ष इस शुभ फलदायक नैवेद्य को बनाती रहेगी और यह नैवेद्य सारे समाज और रिश्तेदारों में बाँटेगी।

शक्ति अनुग्रह

जो घर विधि पूर्वक प्रति वर्ष इस शुभ कार्य को करता है, उस घर को विध्नहर्ता श्री महा गणेश हर किसी मुश्किल से बचाता है। शिव और शक्ति की अपार कृपा उस घर पर होती है जहाँ पन्न देने का शुभ कार्य किया जाता है। हमारे सिद्ध पुरूषों ने पन्न पूजा पर काफी जोर दिया हैं क्योंकि वह त्रिकाल द्रष्टा थे उन्हे विदित था कि आने वाली पौध दिमागी परेशानी का शिकार बनेंगी अतः उन्होने इस के बचाव का रास्ता भी हमें बतलाया है।

पूजा पृथ्वी का अत्यावश्यक अंग है

यह पूजा शरद काल के बीच में होती है जब सारा फसल पक कर तैयार होते हैं। किसान अपनी मेहनत का फल काट कर सुख और शांति का अनुभव करता है। वह अपनी खुशियों में शिव शक्ति और सिद्धि दाता को भी शामिल करते है। इसीलिए वह पृथ्वी की चीज़ों से पूजा आरम्भ करते है। पृथ्वी से लायो हे घास, दर्भ, दूध, फूल, चावल, तेल, यह सब चीजे पृथ्वी माता की देन है। इन्ही से वह आदि देव की पूजा करते है।

पन्न पूजा की विधि

रत्नदीप, धूप, सिन्दूर, कपूर, नारीवन, दूध, दही, फूल, चावल, घास (घ्रमुन) लड़की के हाथ से काता हुआ घागा यह सब वस्तु, पन्न पूजा की सामग्री है।

पूजा स्थान पर एक घड़वी रखकर उस को तिलक, फूल माला और नारीवन बाँध कर सजाना चाहिए । इस घड़े में पानी , दूध, जायफल या सुपारी, एक रूपये का सिक्का थोडा सा ध्रमुण डाले । इस घड़वी को आदि देव सिद्धि दाता महा गणेश और जगत माता उमा का रूप मानकर पूर्व की ओर मुँह करके आसन पर बैठ कर पूजा आरम्भ करनी चाहिए। लड़की के हाथ से काता हुआ धागा भी घड़वी के ऊपर रखें । घड़वी में फूल डालकर पढ़े

संवा सृजामि हृदयं

संतुष्टः मनो अस्तुवा

संसृष्टा स्तन्वः

सन्त वः संसृष्टः

प्राणो अस्तुवः

घड़वी को जल छिड़कते हुए मंत्र उच्चारण करने को कहा गया है।

ऊँ गणानान्तवां गणपति
हवा महे कविं कवीनां उपम भृवस्तम
ज्योष्ट राजं बृह्मानम भगवतः
विनाय कस्य वल्लभसहितस्य
श्री महा गणेशस्य
सि; लक्ष्म्या, महा लक्ष्म्याः
आसनं नमः

घड़वे में अत्र डालते हुए मन्त्र विधि इस प्रकार है।

ऊँ गणानान्तवा गणपति
हवा महे कविं कवीनां
उपम भ्रवस्तमं ज्यष्टे राजं
ब्रह्मणां ब्रहनणसत आनः
भ्रणवन उतिभि सादनं
भ्रणवन उतिभि सीदनं
भगवते विनायकाय वल्लभा
सहिताय श्री महागणेशाय
सिद्ध लक्ष्मै महा लक्ष्म्यै
युष्मान वः पूजयामि।।

फिर बीब गर्भ माता अर्थात पृथ्वी माता, उमा भगवती शारिका, सरस्वती, महा लक्ष्मी और त्रिपुरा भगवती की पूजा होती है। इन शक्ति स्वरूपों का आवाहन होता है।

शास्त्रों में कहा गया है वहाँ सुख और शंति का

राज्य होता है। जगत माता अपने सारे स्वरूपों सहित उस गृहस्थ पर अपनी दया और अनुग्रह की वर्षा करती है।

इसके उपरान्त नैवेद्य का प्रेप्युन होता है। फिर इस का नैवेद्य यजमान को देकर बाकी सारे रोठ पडोसियों, रिश्तेदारों, राह चलने वालों, साधुओं और संतों में बाँटे जाते है।

पन्न कथा

पन्न कथा हर एक घर में अलग अलग ढँग से सुनाई जाती है। इसके बारे में कहा गया है कि जिस पन्न नैवेद्य की पूजा के पश्चात कथा नही सुनाइ जाती तो पन्न देना निष्फल हो जाता है।

तन्त्र पूजा क्या है

तान्त्रिक पूजा आगम शास्त्रों पर आधारित है। आगम शास्त्र भगवान शिव ने भक्तों के कल्याण और मुक्ति के लिए कहे हैं। तान्त्रिक साधना अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का सुलभ मार्ग है। परन्तु इस के लिए गुरू धारण करने की आवश्यकता है।

पहले तान्त्रिक विद्या को भूत प्रेत और काला जादू करने की विद्या कहा जाता था परन्तु आगम शास्त्रों के आम होने से यह गलत धारणा अब मिट गई है।

तान्त्रिक पूजा का आधार क्या है

जिस प्रकार वैदिक पूजा का आधार वेद, उपनिषद और स्मृति है उसी प्रकार तान्त्रिक विद्या का आधार आगम शास्त्र है। तान्त्रिक पूजा मंत्रों से की जाती है और तपोबल की शक्ति प्राप्त होने पर मन्त्र सिद्धि होती है। जिस घर में तान्त्रिक पूजा के अनुसार पूजा, अर्चना, यज्ञ हवन किये जाते है भगवान शंकर और माता उमा उस घर को अपनी छत्र छाया में रखते है। उस घर के सभी कष्ट नष्ट हो जोते है।

कश्मीर में तान्त्रिक पूजा क्यों प्रचलित है

कश्मीरी पँड़ितों की समस्त जाति शिव भक्त है। उनकी भक्ति का लक्ष्य भगवान शिव की दया और अनुग्रह को प्राप्त करना है। कश्मीरी पंड़ितों का महा पर्व शिवरात्रि भी तान्त्रिक पूजा का सुन्दर रूप है।

तन्त्र का इतिहास

महाभारत का युद्ध समाप्त होने के बाद एक नाग तक्षक ने जन्मजेय के पिता परीक्षित की हत्या की । इसका बदला लेने के लिए जन्मजेय ने एक महा यज्ञ रचाया जिसमें वह नागों की आहुति देने लगा हज़ारों नाग मरते गये और खून की नदियाँ बहने लगी । वहाँ एक ऋषि आया, बहुत क्रोधित हुआ ओर उस ने इस नरसंहार को बन्द कराया। उस पर वेग में आया अग्नि देव बहुत क्रोधित हुआ। उस ने शाप दिया कि आज से वेद मन्त्र ऐसे ही होंगे जैसे विष निकाले साँप । यह सच साबित हुआ तो ऋषिगण भगवान शंकर की स्तुति और आराधना करने लगे। भगवान शिव ने ऋषियों की पीड़ा को समझकर वेदों का जोड़ आगम शास्त्र तैयार किया । जिस से मुक्ति और भक्ति बहुत सुलभ हो गई ।

तन्त्रों का आधार

तन्त्रों का आधार वेद नही अपितु आगम शास्त्र है। इस में शिव शक्ति और गणेश साधना के केन्द्र है। बुद्ध धर्म में भी तन्त्र पर काफी ज़ोर दिया गया है। अभिनवगुप्त की तन्त्रालोक पुस्तक भी तन्त्रों की व्याख्या करती है। तन्त्रों में शिव शक्ति, गणेश, प्रकृति और पुरुष पाँच भाग हैं। प्रवृति और निवृति इस के दो मार्ग हैं निवृति वामाचार भक्ति है जिसमें भैरव पूजा होती है।



शिवरात्रि के बारे में चन्द महत्वपूर्ण बातें

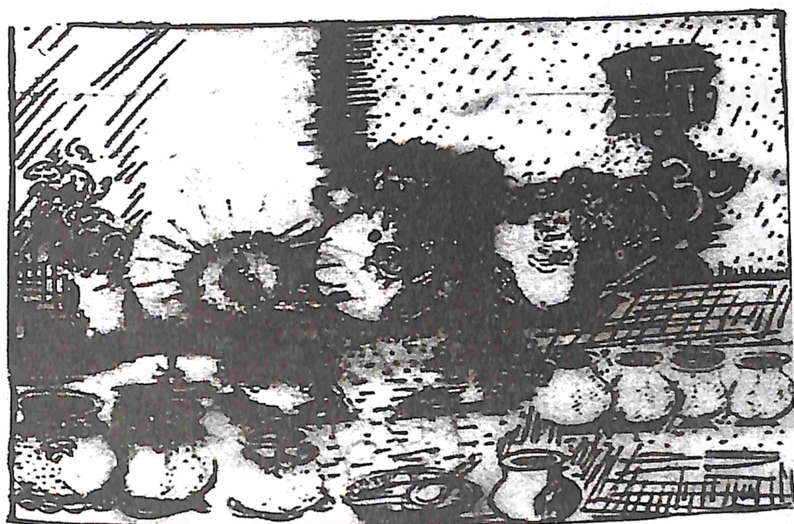
शिवरात्रि कश्मीरी पँड़ितों का महत्व पूर्ण त्यौहार है। इसके बारे में कश्मीरी पँड़ित सब कुछ जानते है। प्रत्येक व्यक्ति को पूजा विधि अच्छी प्रकार याद है। घर के रीति–रिवाज, मर्यादा अलग–अलग होने के बावजूद सामूहिक पूजा एक ही प्रकार की होती है।

परन्तु कई बातें ऐसी है जिनका साधारण जनता को पता नही जैसे शिवरात्रि और वटुक पूजा दो अलग त्यौहार हैं जिनको हम इकट्ठे मनाते हैं।

शिवरात्रि की जड़ें नाग संस्कृति से जुडी हुई है और इसके ऐतिहासिक प्रमाण हमें मोहंजोदारो और हड़प्पा के अवशेषो में भी मिलते है।

वटुक पूजा का वर्णन हमें शिव सिद्धान्त पर लिखी गयी पुरानी किताबों जैसे हर चरित चिन्ता मणि , हर विजय और नील मत पुराण में नही मिलते । फिर प्रश्न उठता है कि वटुक पूजा कश्मीरी पँड़ित सभ्यता में कब और कैसे आरम्भ हुई । इसके बारे में हमें इतिहास के

कुछ पृष्ठों को देखना होगा। जब कश्मीर में केवल ग्यारह पँड़ित घर रह गए थे। वह लोग जो घर बार छोड़ कर भाग गये थे कादिस जब कश्मीर में पहुँचे तो यहाँ ग्यारह पँड़ित घरों को देखकर हैरान हो गए।



जब उन से पूछा गया कि कयामत की इस अंधेर नगरी में आप लोग कैसे बच गए ? उन्होंने कहा जब हम चारों ओर से निराश हो गए थे जब हमारे जीवन के बचने की कोई आशा नही रही थी तो हम ने महाबलवान, दुखहर्त्ता और आपदाओं को शीघ्र नष्ट करने वाले वटुक नाथ की पूजा आरम्भ की । वटुक नाथ महाशक्ति उमा भगवती का इच्छा पुत्र है। जो देखते ही देखते क्लेश को मिटाता है। हमने इस दुख निवारक वटुक

नाथ का आवाहन किया। वटुक नाथ, शत्रु का भय दूर करने वाला है। पूरे गृहस्थ की रक्षा करता है। सरस्वती का प्रभाव बढ़ाता है। योगसिद्धि देता है। साधना को सफल बनाता है। तब से कश्मीर में वटुक नाथ हर घर में, तन्त्र विधि से पूजे जाते हैं। चूँकि कश्मीरी पंड़ित, इतिहास के हर दौर में किसी न किसी सामाजिक अशान्ति के घेरे में रहे अतः यह अपने दुखहर्त्ता , सुखदाता वटुक नाथ का आवाहन करते रहे और वटुक नाथ ने हर मुश्किल घड़ी में उनकी सहायता की । इसके बारे में कहा गया है कि अगर मनुष्य अपने कर्मानुसार किसी मुश्किल में फँस जाये तो उसे ४० दिन तक वटुक नाथ की विधि पूर्वक पूजा करनी चाहिए । ४० दिनों के बाद देखा गया है कि मुसीबतों और मुश्किलात के पहाड़ चूर चूर होकर रह गये। यदि कोई गृहस्थ पीढ़ीयों से वटुक नाथ की पूजा विधि पूर्वक करता आया है और अचानक, वह इस क्रिया को बन्द कर देता है तो उस गृहस्थ को मुश्किलों का मुकाबला करने के लिए तैयार रहना चाहिए । यों तो कहा गया है कि वटुक नाथ की पूजा साल में प्रतिदिन करनी चाहिये । लेकिन परिस्थितियाँ इसकी अनुमति न दें तो साल में

कम से कम एक बार तो वटुक नाथ की पूजा अवश्य करनी चाहिए ।

कश्मीर के ऋषियों, सन्तों और महात्माओं ने अपने ध्यान, ज्ञान और साधना के माध्यम से यह बात सिद्ध की है कि शिव भक्तों को शिवरात्रि के २१ दिनों में शिव लीला का गायन, मनन् और कीर्तन करते रहना चाहिऐ। दान और तपस्या जैसे कर्म इसी दिन से आरम्भ करने चाहिए । कश्मीरी पण्ड़ित यों तो आज भी इस दिन दान करते है, बच्चों को शिवरात्रि की भेंट (हेरत खर्च) देते हैं, मित्रों को खाने पर बुलाते हैं, अच्छे पकवान बनाते है। घर के वह सदस्य जो काम के सिलसिले में घर से बहुत दूर हों इस दिन घर आते हैं क्योंकि यह सामूहिक पूजा है। और इस में घर के सभी लोगों का शामिल होना आवश्यक है।

'शिवरात्रि के 21 दिन

कश्मीरी पंड़ितों में शिवरात्रि केवल एक रात की पूजा नही है यह २१ दिनों का कार्यक्रम है। अगर विधि के अनुसार इन २१ दिनों पर पूजा केलण्डर (Calender) को नही फैलाया गया तो शिवरात्रि का

उतना महत्व नही रहता । क्योंकि इन्ही २१ दिनों में समस्त ज्ञान कलाएँ उत्पन्न होकर सारे घर को आनन्दित करती हैं।

पहला दिन (हुरि ओक्दोह)

इसदिन घर की लिपाई आदि होती है। औरतें शाम को भजन संगीत का गायन करती हैं। साधक अपनी साधना उसी दिन से आरम्भ करता है। शिव साधना और तन्त्र पूजा का आरम्भ इसी दिन से होता है। हुरि ओकदोह को 'शिवरात्रि महिमा' में घर नावय भी कहते है। घर नावय का आध्यात्मिक पक्ष यह है कि अपने शरीर रूपी घर में से , सारी बुराइयों को त्याग कर एक ऐसा स्थान बनाओ जहाँ ईश्वर के अनुग्रह का प्रवेश हो सकें । सारे संकोच त्याग कर, बुरे विचार छोड़कर बुरे कर्मो को तिलांजलि देकर एकाग्रता प्राप्त करके मनन, कीर्तन , स्मरण और तपस्या में जुट जाओ।

दूसरा दिन (हुरि दोय)

इस दिन कश्मीर के शिवालयों जैसे अमरनाथ मामलीश्वर , हरिश्वर , कपाल मोचन , थजीवारा, व्यथ वोतर , भैरव अस्थापन, गंग बल और रामरादन जैसे सिद्ध स्थानों के भैरवों को आमन्त्रित किया जाता है।

तीसरा दिन (तृतीया)

इस दिन गुरू महाराज शिष्य से मिलते हैं। गुरू शिष्य सम्वाद होता है। गुरू महाराज अपने शिष्य को अध्यात्म मे आगे बड़ने की जानकारी देते हैं। कीर्तन भजन , मनन और स्मरण का प्रोग्राम होता है और सांय काल के समय घर में गुरू की पूजा होती है।

चौथा दिन (चतुर्थी)

यह दिन आदिदेव , सिद्धिदाता महागणेश की पूजा के लिए विशेष दिन है। इस रात को हर घर में लड्डू तैयार किए जाते है। पड़ोसियों के घरों में और बच्चों में बाँटे जाते है। शाम को भजन, कीर्तन, मनन चिंतन का कार्यक्रम चलता है।

पाँचवा दिन (पंचमी)

पूजनीया गृहा विप्र , दवागारा विशेष्यते,

तदा सीतान्व सर पूज्या, गन्ध माल्यादिमिर्स्तथा ।

पहले भजन कीर्तन , मनन , समाधि नित्य नियम पूरा करके माता पिता को नैवेद्य देना चहिए । जहाँ रहते हो उस स्थान की पूजा करो फिर माता उमा भगवती की पूजा , फूल मालाओं और सुगन्धित पदार्थो

से करो । ऐसा नील मत पुस्तक मे कहा गया है।

छठा दिन (शष्टी)

इस दिन पार्थीश्वर बनाने के लिए मिट्टी जो बिल्कुल शुद्ध हो लानी चाहिए । मध्याहन की संध्या के उपरान्त एकान्त वास करो और समाधि में लीन हो जाओ । सांय काल की संध्या के उपरान्त अपना नियम जारी रखो।

सातवाँ दिन (सप्तमी)

यह दिन शिवरात्रि महोत्सव में भाग्यशाली पर्व है। इस दिन ज्वाला भगवती अवतरित हुई है। कहा गया है कि इस दिन ज्वाला भगवती की पूजा अर्चना करनी चाहिए । सनिवारियों को यज्ञ का काला टीका लगाना चाहिए । माता के सहस्त्र नामों को कीर्तन करना चाहिए । जो मनुष्य कालारिष्ट योग में भाग्यवश फँस गया हो ज्वाला भगवती की कृपा से वह इस संकट से बच जाता है। प्रदोष काल से आधी रात तक भजन कीर्तन में व्यस्त रहना चाहिए ।

आठवाँ दिन (अष्टमी) हुरि अष्टमी

यह पर्व माता दुर्गा के अवतार लेने का दिन है। इस

दिन रात्री जागरणका बड़ा महत्व हैं। यह बहुत ही सुखदायी, दुख नाशनी रात्री है। इस रात्रि को माता की कलाएं विकसित होकर भक्तों की मनोकामनाऐं पूर्ण करती हैं।

नवमी

इस रात्रि को सत्संग करना , शिव पूजा, शिव कथाओं का मनन कीर्तन करना भजन में लीन रहना शुभ व फल दायी है। इस दिन साधक को अपना लक्ष्य साफ दिखाई देने लगता है।

दशमी

यह देवताओं के आगमन का समय है। इस रात नागों के राजा नील व पिशाचों के राजा निकम्भ की पूजा की जाती है। और माता दुर्गा की सप्तशती का पाठ किया जाता है।

एकादशी

इस रात्रि को भजन कीर्तन करने से भगवान शंकर प्रसन्न होते है। इस रात को साधक के मन में अजीब प्रकार के आनन्द का आभास होने लगता है। भगवान शंकर की उस घर पर कृपा और दया की वर्षा होती है। जिस घर में शिव की लीलाओं का कीर्त्तन हो रहा हो।

द्वादशी और त्रयोदशी

यह दो दिन शिवोत्सव के महत्व पूर्ण दिन है। द्वादशी के प्रदोष काल से त्रयोदशी की आधी रात तक भगवान शंकर अपने गणों और भैरवों के साथ भक्तों की साधना का दृष्य देखते हैं। कहते है कि जब ज्योर्तिलिगं की पूजा आरम्भ होती है तो सारे देवता और गण आनन्दित हो उठते हैं। भगवान महादेव उस घर पर अपनी दया और अनुग्रह की वर्षा करते हैं जहाँ आधी रात को शिव पूजा चल रही हो । जब वटुक नाथ की पूजा आरम्भ होती है तो उमा भगवती , साधक के मन को , योगियों के नाड़ी जागरण को और संन्तों की परमतत्व में साक्षात्कार की अभिलाषा को पूर्ण करती है। परन्तु यह सारी प्रक्रिया तब सम्भव है जब मनुष्य प्रतिपदा (ओकदोह) से लेकर ब़ारहवें (द्वादशी) रात तक विधि पूर्वक पूजा अर्चना , ज्ञान ध्यान, कीर्तन मनन और सत्संग में मग्न रहता है।

चतुर्दशी (चौदहवाँ दिन)

नील मत पुराण में वर्णन आया है।

यस्थान्तु समतीतायां

या स्थान्कृष्ण चतुर्दशी

तस्यामुपोषितः स्नातः

पूजयच्चें महेश्वरम्

शिवरात्रि के बारहवें दिन से चोदहवें दिन तक साधक को उपवास रखना चाहिये । विधि पूर्वक स्नान और ध्यान करके भगवान शंकर की पूजा करनी चाहिये । भद्र पुरूषों को दार्थबेश्वर की पूजा करनी चाहिए । भावना सहित उस पर पुष्प अर्पण करने चाहिए । **'राम पूज्य गन्धमान्या दिशकृत वस्त्रानुलेमनै'** पार्थीश्वर को फूलों के हारों से और लाल कपड़े से सजाना चाहिए । नाना प्रकार के भोजन अर्पण करने चाहिए और होम यज्ञ करना चाहिए ।

नैवेद्यौ विर्वचै ब्रहर्च वहियर्गत पणै

ब्राह्मणों को आदर सत्कार करना चाहियें । शिव की कथाये सुननी चाहिये और शिव–धर्म को पढ़ना चाहिये ।

इच्छया पूजनीय स्याच्छैणं मासेणु वा नवा।

सर पूज्य रूद्र लोकस्यो गणपत्यमवा पुनुयात।।

जो व्यक्ति शिवचतुर्दशी से अमावस्या तक समाधि में लीन हो तो कोई कारण नहीं कि वह शिवलोक को प्राप्त न

हो शिव के गण उसकी रक्षा करते है। अमावस्या प्रकाशका उत्सव है। इस दिन शिव शक्ति का अनुग्रह उन सभी लोगों पर होता है जो शिव की पूजा में व्यस्त होते है।

तान्त्रिक पूजा

शिवआराधना और शिवरात्रि पूजा, तन्त्रा पर आधारित है । तन्त्र पूजा लक्ष्य पर पहुचँने का सबसे पक्का और विश्वसनीय मार्ग है। जो मनुष्य २१ दिन तक तन्त्र विधि के अनुसार पूजा करता है उसको लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य होती है। ऐसा शिव साधना की प्राचीन पुस्तकों में वर्णन् आया है।

शंकर का फोटू

तन्त्र का आधार

जिस प्रकार वैदिक पूजा का आधार वेद, उपनिषद और स्मृति है इसी प्रकार तन्त्र का आधार आगम शास्त्र हैं। तान्त्रिक पूजा मंत्रो से की जाती है । मनुष्य जीवन में मंत्र सिद्धि होने से जीवन से मुक्ती का मार्ग सुलभ हो जाता है। तंत्र पूजा, सिद्धि , शान्ति सुख व भगवान शंकर की कृपा, माता शरिका का अनुग्रह पाने कानाम है। वह ईश्वरीय मार्ग दर्शाता है। जादू टोने से इस का

कोई सम्बन्ध नही है।

कश्मीर में तान्त्रिक पूजा क्यों प्रचलित है ?

कश्मीरी पंड़ितों की जनसंख्या का अधिकतर भाग शिवभक्त है। इनका लक्ष्य भगवान शंकर की कृपा और अनुग्रह प्राप्त करना है। कश्मीरी पंड़ितों का सबसे महत्वपूर्ण त्यौहार शिवरात्रि है। यह भगवान शंकर की पूजा, आराधना और मंत्र सिद्धि का दिवस है।

तान्त्रिक पूजा का ऐतिहासिक प्रमाण

महाभारत का युद्ध समाप्त होने के पश्चात एक नाग, तक्षक ने जनमजय के पिता परीक्षत की हत्या की। इसका बदला लेने के लिए जन्मजेय ने एक बहुत बड़ा यज्ञ आरम्भ किया। जिसमें नागों की बलि दी जा रही थी। जब जन्मजेय हज़ारों नागों की बली दे चुका तो चारों ओर हा हा कार मच गया । उसी समय वहाँ एक ऋषि पधारे । उन्होने इस भयानक नरसंहार को बन्द करने का आदेश दिया । इस पर, आवेग में आये अग्नि ने ऋषि को शाप दिया, जाओ आज से सारे वेद ब्राह्मणों के लिए ऐसे ही होंगे जैसे विष के बिना साँप । तुम्हारे वैदिक मंत्रों में कोई शक्ति नही रहेगी। ब्राह्मणों ने जब

वेद मन्त्रों को परखा तो उनकी शक्ति समाप्त हो गई थी । तब ब्राह्मणों ने भगवान शंकर की स्तुति आरम्भ की । भगवान शंकर ने जगत की रक्षा और वेदों का विकल्प तैयार करने के लिए अपने भक्तों को आगम शास्त्र का उपदेश दिया । आगम शास्त्र, तन्त्र पूजा का केन्द्र है।

दूसरा कारण यह है कि महाभारत का युद्ध समाप्त होने पर शहरों पर जनसंख्या का दबाव बड़ गया । वैदिक यज्ञ आदि रचाने के लिए जगह की कमी हो गई। जंगलों में धीरे धीरे गुरूकुल की प्रथा समाप्त हो गई। वेद जैसी बहुतभारी और प्रभावशाली पुस्तकों को पढ़ने का किसी के पास समय नही बचा । इसलिए ऋषियों ने मन्त्रों के आधार पर पूजा, ज्ञान और ध्यान का नया तन्त्र विकसित किया । इस प्रकार की पूजा को, जो मन्त्रों द्वारा पूर्ण होती है तन्त्र कहा जाने लगा। इसमें समय कम लगता है और सिद्धि तुरन्त होती है।

तन्त्रों का आविष्कार

तन्त्रोपासना का कोई आर्य आधार नही है। यह प्राचीन भक्ति मार्ग है। इस भक्ति मार्ग में शिव और

शक्ति की पूजा होती है। शिवधर्म के प्रकाण्ड़ पण्ड़ित अभिनवगुप्त की (प्रसिद्ध) पुस्तक ' तन्त्रालोक' इस विषय पर लिखी गई अमूल्य पुस्तक है।

तान्त्रिक पूजा के स्त्रोत

तान्त्रिक पूजा के पाँच स्त्रोत हैं। शिव, शक्ति, गणेश , पुरूष और प्रकृति। आगम शास्त्र भी इन्हीं पाँच भागों में विभाजित हुआ है। इसमें प्रकृति और पुरूष के रिश्ते पर काफी बल दिया गया है।

प्रवृति और निवृति

निवृति वामाचार भक्ति का आधार है। क्योंकि इस में भैरव पूजा का काफी भाग रहता है। कहते है कश्मीर के बड़े–बडे सन्त जैसे स्वामी राम जी, स्वामी महताब काक, स्वामी विद्याधर , भगवान गोपी नाथ जी इसी भक्ति मार्ग के अनुयायी थे । इस भक्ति में एकदम सिद्धि प्राप्त होती है। इसमें, "मंत्र" उच्चारण के साथ ही अपना प्रभाव दिखाना आरम्भ कर देते हैं।

अंतिम संस्कार

जातस्य हि ध्रवों मृत्य - र्धवं जन्म मृतस्य च, तस्मात्-हार्येथे न त्वं शोचितृम् अर्हसिः

एक जीवन के अन्त होने से दूसरा आरम्भ होता है आत्मा एक शरीर त्याग कर दूसरा चोला पहनता है। इसीलिए भी गीता का कथन है कि शरीर त्यागने पर शोक करना उचित नही है, क्योंकि जब दूसरा जीवन आरम्भ हो तो शोक नही अपितु भगवान की लीलाओं का मनन करना चाहिए।

हिन्दू मान्यता के अनुसार जिस प्रकार मनुष्य के गर्भादान अवस्था में ही संस्कार आरम्भ होते हैं, उसी प्रकार मनुष्य के पुराने वस्त्र त्यागने के समय भी विधि पूर्वक संस्कार किया जाता है। जिस प्रकार जन्म दिन के शुभ अवसर पर नये वस्त्र धारण करके पूजा होती है, उसी प्रकार नया जीवन प्राप्त करने के समय एक यज्ञ का प्रबन्ध होता है।

शस्त्रों में अंतिम संस्कार को महायज्ञ के नाम से पुकारा गया है। यह महान यज्ञ मनुष्य के प्राण त्यागने के समय से तेरह दिनों तक चलता रहता है। इस अन्तिम संस्कार को इस लिये महान् यज्ञ कहा गया है कि इस हवन की अग्नि में हम पंचभौतिक शरीर का स्वाहा करते हैं, अर्थात आहुति डालते है। एक सम्पूर्ण शरीर की आहुति अग्नि को भेंट की जाती है। इसलिये शास्त्रों में इस महान यज्ञ की महिमा का गान हुआ है।

कहा गया है कि इस यज्ञ को जितनी श्रद्धा भावना और निष्ठा के साथ सम्पन्न किया जाता है उतने पुण्य फल यज्ञ के भागीदारों को मिलते हैं। क्योंकि इसमें वटुक नाथ की पूजा होती है। वटुक नाथ के बारे में पहले ही वर्णन हुआ है कि भैरव राज वटुक नाथ उमा भगवती

का इच्छा पुत्र है और यह हर संकट से मुक्ति देने वाला और विघ्न नाशक है। शिवरात्रि के दिन पूजा भी इसी वटुक नाथ की होती है। इसके साथ ही भैरवों का एक समूह होता है। जिंन की पूजा अर्चना आँगन में होती है पहले कलश में श्री महागणेश की पूजा होती है फिर जगत्माता महा गायत्री के कलश और फिर भैरव राज की पूजा होती है। इस के साथ ही यागय देवता , महादृष्ट , कराल भैरव , मदोत्कट, श्मशानाधि पति , अग्नि देवता और वटुक नाथ को आसन देकर पूजा करते है। इन भैरवों का वास भिन्न भिन्न दिशाओं में होता है।

गणपत्यादीनां कलश मण्डल देवतानां
दक्षिणे अस्त्रस्य - वामें गायत्र्याः
मध्ये भैरवस्य , दक्षिणे महादृष्ट्रस्य पश्चिमे
कारालस्य , उत्तरे मदोत्कस्य पूर्वे श्मशानाधिपतेः
मध्ये भैरवस्य आग्नेये वटुकादीनां इदं आसनं नमः।



दाह संस्कार ही क्यों ?

पांचभौतिक शरीर को पंचभूतों से मिलाने के बहुत से तरीके है। परन्तु शास्त्रों ने अग्नि दाह को सबसे पवित्र माना गया है। यह भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी पहचान है कि यहाँ अग्नि की पूजा पाँच हज़ार वर्ष पहले आरम्भ हुई है जबकि आज के वैज्ञानिक सिद्धान्त ने यह सिद्ध कर दिया है कि संसार के सब प्राणियों के शरीरों में अग्नि है। चाहे वह जड़ हो या चेतन। विज्ञान का कोई भी आविष्कार लीजिए । जब तक उसमें अग्नि का प्रवेश न हो वह किसी काम का नही रहता है। मोटर बाइसकल से लेकर हवाई जहाज़ और कम्प्यूटर से राकेट लांचर तक सब बैटरी अर्थात अग्नि के द्धारा चलते है यही अग्नि जब प्राणी में समाप्त होती है तो मनुष्य जीवित नही रहता और मनुष्य को इसी अग्नि के द्धारा संस्कार भी किया जाता है। हिन्दू धर्म में जितने भी शुभ कार्य होते है। हवन, होम, यज्ञ , शादी ब्याह या यज्ञोपवीत का यज्ञ हो सब में अग्नि का स्वागत होता है। सारे देवता और जगत जननी महाशक्ति के जितने भी स्वरूप है इन सब की आहुति भी अग्नि के द्धारा ही होती है। यह आश्चर्य की बात है कि जिस अग्नि की भूमिका आज का विज्ञान मानता और प्रयोग में लाता है । हमारे समाजी वैज्ञानिकों अर्थात आत्मज्ञानी ऋषियों को पाँच हज़ार वर्ष पहले इस का ज्ञान था । इसीलिये उन्होंने मानव कल्याण के लिये अन्तिम संस्कार के लिये अग्नि को ही चुन लिया है। अग्नि सब से उत्तम और पवित्र वस्तु है अन्तिम संस्कार के लिये । मानव शरीर के चोला बदलने के समय घर के आँगन में पहले यज्ञ का आरम्भा होता है जिसमें ओंकार रूपी ईश्वर की पूजा होती है। वेदों की महानता का ज्ञान होता है। यजुवेर्द , सामवेद , अर्थवेद ओर ऋगवेद की पूजा इसलिये होती है कि इस वेद भगवान से हमें ऐसे

मंत्र मिलते है जिनका प्रयोग करने से मनुष्य इस भवसागर से पार हो **जाता** है। मनुष्य के जन्म जन्म के पाप मिट जाते है और उसके मुक्ति **के** द्धार खुलते है।

ऊँ कारो यस्य मूलं

क्रम पद जठरं, छन्द विस्तीर्ण शखा।

ऋक् पत्रं साम युष्पं यजुर – उचित फलं स्थात् । अथर्वा प्रतिष्टा यज्ञ छाया , धेतैर द्विजगण ?

मधुपैर् गीयते यस्य नित्यं । शक्ति : सन्ध्या

त्रिकालं दुरित भय हरः पाद्नो । ना वेद वक्षः?

वेद पाठ होने और महामन्त्रों का उच्चारण होने के अन्तर्रात सिद्धिदाता, विघ्नहर्ता महागणेश, श्री महादेव, जगत् जननी माता शक्ति, विनायक तथा वल्लभा का आहवान होता है।

ऊँ भगवते भवाय देवाय

उमा सहिताय परमेश्वराय

भगवते विनायकाय वल्लभ सहिताय

श्री महा गणेशाय ऊँ हां हीं सः सूर्याय प्रभा सहिताय

भगवान शंकर की पूजा अर्चना के अन्तर्गत चारों दिशाओं की रक्षा करने वाले देवताओं, भैरवों और वटुकनाथ की पूजा होती है। इस अन्तोटी के महायज्ञ के समय इस सिद्धि दायक मंत्र का कई बार उच्चारण होता है।

गणपत्यादि कलशमण्डल

याग देवताभ्यः दक्षिणे अस्त्राय

वामे गायत्र्यै, मध्ये भैरवाय

दक्षिणे महांदण्ट्राय ?

पश्चिमें करालाय, उत्तरे मदोत्कटाप

पूर्वे श्मशानादिपतये, मध्ये भैरवाय

अग्नेये वंटुकादिम्य:–

इसी मंत्र का कई बार उच्चारण करने के अर्न्तगत उन सारे देवताओं, भैरवों और भैरव राज़ वटुक नाथ से स्थान ग्रहण करने की प्रार्थना की जाती है। शास्त्र विधि के अनुसार मनुष्य की आत्मा जब शरीर त्याग देती है तो यह दस दिन तक इसी स्थान पर वास करती है, जहाँ उसने स्थूल अवस्था को त्याग दिया होता है।

मनुष्य की सूक्ष्म अवस्था नौ (9) दिनों तक रहती है। (कर्म कांड में यूँ तो इसका समय एक वर्ष तक माना गया है। मगर आम धारण नौ दिन की मानी जाती है। इन नौ दिनों में प्रतिदिन एक पिण्ड़दान, तर्पण , पूजा अर्चना और विधि पूर्वक व्रत रखने का कार्यक्रम रहता है। अपने पितर के नाम पर दान, फलमूल आदि साधुओं , सन्तों और आर्थिक कमज़ोरी में फंसे व्यक्तियों और अनाथ बच्चों में बाँटना चाहिए । दिन को भजन कीर्तन और रात को कथा श्रवण कार्यक्रम करना होता है दसवै दिन यदि किसी दरिया पर जाकर दस दिनों के दस पिंड़ रख कर उनकी पूजा होती है । तर्पण होता है। क्रिया करने वाला सिर का मुण्ड़न करा लेता है। नये वस्त्र पहनता है और ईश्वर से अपने पितर की मुक्ति की प्रार्थना करता है।

सामाजिक बन्धन

दसवें दिन की क्रिया में .शामिल होने के लिये सारे रिश्तेदार, मित्र , सगे सम्बन्धी और पड़ोसी दरिया पर अपना शोक प्रकट करने के लिए पहुँच जाते है। यद्यपि इस का हवाला कर्म काण्ड़ में कहीं नही मिलता है परन्तु यह एक अच्छा उदाहरण है कि क्रिया करने वाला अब शोक ग्रस्त रहने के बजाय संसार की ज़िम्मेवारियों को उठाने के लिए अपने को तैयार पाता है। इस सभा का दूसरा सामाजिक पहलू भी है। पहले समय में हर कोई सगा सम्बन्धी, मित्र और पड़ोसी क्रिया करने वाले की जेब में पैंसे डालता था ताकि यदि गुज़रे हुए मनुष्य से घर को आर्थिक संकट पैदा हो । यदि वह घर की आय का एकमात्र साधन हो तो यह आर्थिक सहायता उस घर को आर्थिक दृष्टि से डूबने से बचाती थी। अतः दसवें दिन की क्रिया में शामिल होने को धर्म का दर्जा मिल गया। आज यह तरीका बदल गया है परन्तु घाट पर पहुँचना आज भी बराबर जारी, है।

ग्यारहवें दिन की क्रिया सब से उत्तम और कल्याणकारी क्रिया है जिस से क्रिया करने वाले तथा घर के सारे सदस्य और रिश्तेदार जिन के साथ खून का सम्बन्ध हो. भगवान शंकर का आर्शीवाद प्राप्त करने के साथ साथ अपने पितर की जो एक दिन पहले प्रेत योनि से निकल कर पितर योनि में चला गया होता है, का कल्याण और मंगल होता है। इसदिन की पूजा या क्रिया इसलिए महिमा रखती है क्योंकि इस दिन पाँच महान क्रियाओं का समाधान होता है।

(१) कहा गया है कि पितर के नाम पर पहले तीन महीनों तक 15

- 15 दिनों के पश्चात श्राद्ध किया जाये। तीन महीनों के बाद एक वर्ष तक महीने के अर्न्तगत श्राद्ध किया जाये । अब परिस्थितियों को सामने रखकर देश और काल का विचार करके ग्यारहवें दिन ही पूरे साल के श्राद्ध सम्पन्न किये जाते है ताकि यदि क्रिया करने वाला साल में किसी मुश्किल परिस्थिति में फंस जाये तो उसके पितर की आत्मा श्राद्ध न होने के कारण भटकती न रहे।

(२) इस दिन प्रतिमा की पूजा होती है अर्थात भगवान विष्णु जो तीन कारणों में कल्याण कारी कारण है उसकी पूजा होती है ताकि भगवान विष्णु प्रेत आत्मा को अपनी शरण में लेकर मुक्ति प्रधान करें।

(३) तीसरा कारण यह है कि क्रिया करने वाला अपने पितर के नाम पर आईना और कंगे से लेकर बिस्तर और पलंग तक सब दान करता है। क्रिया करने वाले गुरू जी के लिये नये कपड़े और गुरू माता के लिए लाल चुनरी (जो ज़गत माता की निशानी है) दान करते है।

(४) अपने पितर के नाम पर तर्पण करता है और अपने गुरू जी से साल भर का तर्पण करने के लिये कुम्भ देने का घढ़ा और तर्पण करने का मन्त्र प्राप्त करता है।

(५) अन्त में क्रिया करने वाला अपने मोक्ष मुक्त हुए पितर के नाम पर गाय का दान करता है क्योंकि गरूढ़ पुराण में लिखा है कि वैतारिणी नदी को पार करने का एक मात्र सहारा गाय

माता ही है। इन सारी क्रियाओं के लिए ग्यारहवें दिन की क्रिया की बड़ी महिमा है।

बारहवें दिन की महिमा और श्रेष्ठता का शास्त्रों में विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है। इसी दिन ईश्वर को प्यारे हुए व्यक्ति के लिये गुरू जी के तपोबल और क्रिय मुक्ति का मार्ग रोशन होता है। बह इसी दिन अपने पितरों से 'पिण्ड़ मिलवन' अर्थात पिण्डों के मिलाप से जा मिलता है। यह एक प्रकार का पहचान पत्र उसे प्राप्त होता है जिस के आधार पर मनुष्य को उसके कर्मों के अनुसार गति प्राप्त होती है। कहा गया है कि संस्कार मनुष्य को मार्ग दर्शन कराते है और मुक्त हुए मनुष्य को पापों से मुक्ति दिलाते है।

यह तेरह दिनों की क्रिया यूँही वहम का पुलिन्दा नहीं, अपितु यह प्रार्थना , आहान और नित्य नियम नियम क्रिया के बल पर गुज़रे हुए व्यक्ति के लिए रेगिस्तान में पानी के चश्में के समान है।

मनुष्य भी परमात्मा का ही अंश है यह भी उसी सूर्य की किरण है जिस ने संसार को जीवन दिया है। इन क्रियाओं का तात्पर्य यही है कि हम अपनी १३ दिनों की आराधना में उस महान शक्ति से विनती करते है कि हम से बिछुड़े हुए आत्मा को हे प्रभु, तुम अपने महान प्रकाश में शामिल करों । यही हमारी विनती है इसी कारण हम ने आपके सारे देवी देवताओं और प्रतिमा के रूप में आपका आहवान किया है।

संग्रहेण सुख दुःख लक्षणं मां प्रतिस्थितमिदं भ्रणु प्रभो
सौख्येष भवता समागमः स्वामिना विरह एवं दुःखिता ।।

हे परमात्मा मुझ पर दय करो और मेरी विनती सुनो। मै दुख और सुख की कहानी वर्णन् कर रहा हूँ। आप में समा जाना सुख है और आप से जुदाई दुख है'। और यही ईश्वर में समाने की क्रिया इन तीन दिनों में पूर्ण हो जाती है। इस कार्य को पूरा करने के लिये एक पुत्र ही पितर की नैया को पार लगा सकता है।

पुंनरकात् त्रायते हति पुत्रः।

पुत्र ही पिता को नर्क में जाने से बचा सकता है। यदि किसी का सन्तान न हो या खूनी रिश्ते में भी कोई बच्चा न हो या अपना सन्तान किसी विवशता के कारण समय पर न पहुँच सके तो कहा गया है कि इन तीन दिनों (दसवां ग्यारहवाँ और बारहवाँ) की क्रिया कुल गुरू के द्वारा कराने की आज्ञा दी गई है। यदि वह ऐसा नही कराता तो उसको पितृऋण के अभिशाप से कोई बचा नही सकता ।



लेखक की अन्य पुस्तकें

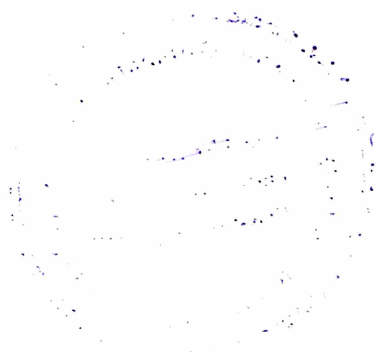
1 कुलयाति अबदुल अहद नाजिम	कलचरलअकाडमी प्रकाशन
2 तलमीहात	कलचरल अकाडमी प्रकाशन
3 काशमीर की कदीम राजधानी बिजबिहारा	History
4 तनकीद–त– तखलीक	Criticism
5 अहर वनैक आलव	Poetry
6 अलमास	Poetry
7 तहकीक	Criticism
8. Cultural history of Doda J&K	History
9. Ancient seat of hearning Ramnagar.	History
10. अनूखा मुसाफिर	Fiction
11. नगमत– त–कशीर	Research
12. सबदिगुल	Radio Plays
13. काशमीर दर्शन	History
14. जदीद तालीम	Education
15. कशमीर में शकति पूजा	Philosophy
16. कशमीर पंड़ितो के संस्कार	Culture

Bibliography

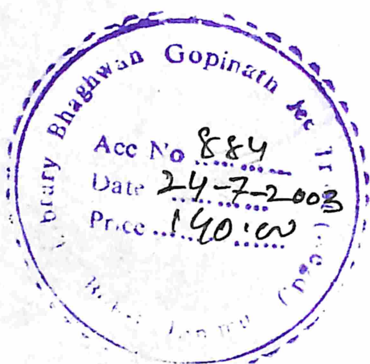
1) Raj Tarangni — Steen
2) Nilmat puran — Ved Kumari Gaya
3) Vilasta mahatam — Brangesh Samhita
4) Arth Shastra — Chanakya (made available by Sh. Bhushan lal shastri)
5) Kashmiri pandit — A T.N. Koul S.Bhat. A Cultural Heritage
6) Kasheer number — Amin kamil
7) Kashiri - hund Shaiv Mat — B.N.Kalla
8) आर्यों का आदिनिवास — Bhajan Singh
9) A History of Kashmir — Dr. Bamzai
10. Discources on Sanskars — Dr. Baljee Nath Pandit
11.) Karam Kund — Prem nath shastri cmade available by Sh. Bhushan lal shastri.
12) अंतिम संस्कार प्रमनाथ शास्त्री सहायता भूषन लाल शास्त्री
13) Logakshi grahi sutar — मर्हषी लोगाक्ष सहायता : भूषन लाल शास्त्री
14) Uma Jivani — Swama nand ji
15) Ancient India — R.C. Muzamdar
16) Encyclopaedia of Indian Culture — R.N.Soletore
17) Hindu Civilisation — Dr. R.K. Mukerji
18) Cultural History of India — Dr. S.K. Chatterji
19) Indian Pandits in the hand of snow — S.S Chander Dass
20) हमारी परम्परा — वियोगी हरि
21) Three articles in Kashmiri Dev gone, and marriage rituals — Dr. Amar Mulmohi
22) Omkar & Gaytri varnan — Poshbab
23) नित्य कर्म पूजा प्रकाश — रामनवन पिश्र



कशमीरी पंडितों की संस्कृति के मूलाधार

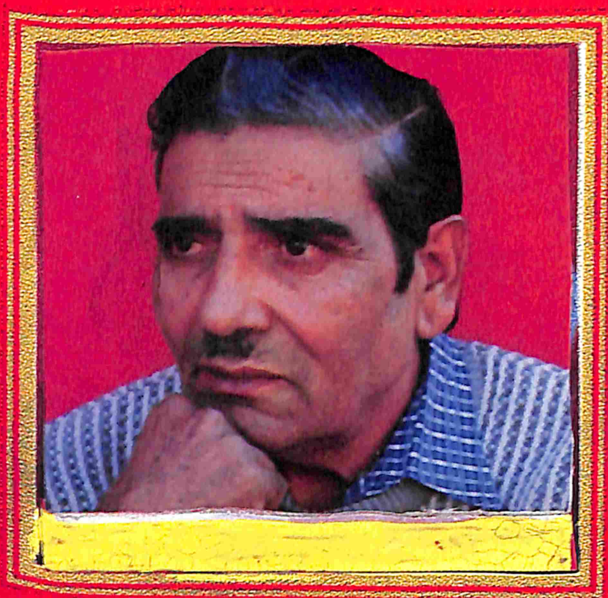





Bhaghwan Gopinath
Acc No 884
Date 24-7-2003
Price 140.00



लेखक



मोहन लाल आश